हंस-मयूर

(ऐतिहासिक नाटक)

वृन्दावनलाल वर्मा, एडवोकेट

(लेखक—झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कचनार, मृगनयनी, मुसाहिबजू, प्रेम की भेंट, विराटा की पद्मिनी, अचल मेरा कोई, राखी की लाज लगन, गढ़कुंडार, कुण्डली-चक्र आदि)

चतुर्थ संस्करण

मयूर-प्रकाशन
झांसी।

मूल्य
२।)

भूमिका

ऐतिहासिक उपन्यास अथवा नाटक लिखने में कई कठिनाइया हैं जो सम्पूर्णतया काल्पनिक कथा के लिखने में नहीं होती हैं। इतिहास की बातों को बदलने का अधिकार लेखक को नहीं है। इतिहास के समय का ही उसे वर्णन करना होता है, उस काल के समाज और सार्वजनिक दशा से उसकी कल्पनाशक्ति नियन्त्रित हो जाती है, उस समय के वेश और रहन-सहन का उसे ज्ञान प्राप्त करना होता है। श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा ने विक्रमादित्य के काल से इस नाटक 'हंस-मयूर' का सम्बन्ध रक्खा है। लेखक ने नाटक के आरम्भ में बड़ी योग्यता से उस समय का परिचय दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस नाटक के लिखने से पूर्व कितना परिश्रम और अन्वेषण आवश्यक है। केवल ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो भी नाटक आदर का पात्र है।

भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में कहा है—

'लोकसिद्ध' भवेत सिद्ध' नाट्यलोक स्वाभावजम्।
तस्मान्नाट्य प्रयोगे तु प्रमाण लोक इष्यते॥'

इसी बात को अंग्रेज़ी कवि Dryden ने कहा है "The drama's laws the drama's patrons give" प्राचीन शास्त्रकारों ने यह भी कहा है कि नाटक के ये अङ्ग हैं—

अभिनय, प्रकृति, पाठ्य, छन्द, अलङ्कार, स्वर, संगीत। "हंस-मयूर" इन सबसे अलंकृत है। साहित्यिक दृष्टि से इसका चरित्र चित्रण दृढ़ और आकर्षक है। कथा रोचक है, पाठक को पढ़ने में आनन्द मिलता

है। साथ ही मेरा विश्वास है कि रंग-मंच पर इसका अभिनय सफल होगा। अभिनय का सिद्धान्त भरत मुनि के शब्दों मे यह है—

'वयोऽनुरूपः प्रथमस्तु वेषो
वेषोऽनुरूपश्च गति प्रचारः।
गति प्रचारानुगतं च पाठ्य
पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः॥"

यदि इस नाटक का अभिनय कुशल पात्रों द्वारा हुआ तो इसके देखने वालों को एक अपूर्व झलक अतीत भारत की मिलेगी। एक और विलक्षणता इस नाटक मे है जो पाठक और दर्शक हिन्दी के बहुत से और नाटकों में नहीं पायेंगे—वह है इसकी भाषा, जिसमे न तो गद्य काव्य का प्रसार किया गया है, और न कृत्रिमता आने पाई है। प्रसाद जी महाकवि थे, प्रेमचन्द जी सफल उपन्यास लेखक थे परन्तु श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा उपन्यास और नाटक, दोनों कला में अपना, विशिष्ठ स्थान रखते हैं।

मेरी सम्मति में ऐसी उत्तम पुस्तक यदि विद्यार्थियों को पढ़ने को मिले, तो मनोरञ्जन के साथ-साथ उनको भारतीय संस्कृति से भी परिचय होगा और उनको अच्छा उपदेश मिलेगा।

काशी विश्वविद्यालय,
२५-६-४८

अमरनाथ झा

परिचय

हिन्दी में विक्रमादित्य के ऊपर जो नाटक अबतक लिखे गये हैं, उनमें आधुनिकतम ऐतिहासिक अनुसन्धानों का बहुत कम उपयोग किया गया है। और चित्रपटो की तो बात ही निराली है। एक बार 'बिक्रमादित्य' चित्रपट (फिल्म) को देखकर तो मनमें बहुत ही ग्लानि हुई थी। यह चित्रपट उस समय के इतिहास और तत्कालीन अवस्था का विपर्यय मात्र था। नाटको और कहानियों मे तो कुछ है भी, चित्रपट तो अनर्गल ही था। विक्रम सम्वत् और विक्रमादित्य के सम्बन्ध का पुराना ऐतिहासिक मत चन्द्रगुप्त द्वितीय मे अपना स्रोत बहुत समय तक पाता रहा। परन्तु शिलालेखों और सिक्कों से यह मत बिलकुल निराधार प्रमाणित हुआ है। अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि विक्रम सम्वत् ईसा से ७५ वर्ष पूर्व ही स्थापित हुआ था और मालवगणतन्त्र की पुनः स्थापना के उपलक्ष्य में इसका प्रचलन किया गया था।

इस निर्धार पर पहुँचने के लिये चार शिलालेख मिले हैं। पहला सं० २०२ का है, दूसरा स० ४२८ का, तीसरा सं० ४६१ का, और चौथा सं० ४६३ का। यही समय गुप्त सम्राटो के उद्भव और विकास का भी है। इनमें से किसी भी शिलालेख में किसी भी गुप्त सम्राट की कीर्ति या नाम का उल्लेख नहीं है। विक्रम शब्द का भी कोई उपयोग नहीं है। पहला लेख उदयपूर राज्य में, नादसा में एक यूप पर है। वह इस प्रकार है:—

कृतयोर्द्वयो वर्षशतयो द्व्यशीतयोः चैत्र पूर्णमास्याम।

कृतके २०२ वर्ष उपरान्त की चैत्र पूर्णिमा में।

दूसरा शिलालेख भरतपूर राज्य में प्राप्त हुआ है:—

कृतेपु चतुर्षु वर्ष शतेष्वष्टाविंशेषु।

कृतके ४२८ वें वर्ष में।

तीसरा मन्दसोर में प्राप्त:—

> श्री मालवगण आते प्रशस्ते कृत संज्ञिते।
> एम षष्ट्यधिके प्राप्ते समासत चतुष्टये।

इसमें मालवगण और कृत को संयुक्त कर दिया गया है। एक प्रकार से दोनों को एक दूसरे का पर्याय सा बना दिया है। 'मालवगण या कृत नाम से विख्यात ४६१ वें वर्ष में।'

चौथा शिलालेख भी मन्दशौर से मिला है:—

> मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये।
> त्रिनवत्याधिकेऽब्दानांऋतौ सेव्य घनस्तने।

मालवगण की स्थापना से ४६३ वें वर्ष में।

मालवों का गणतन्त्र बहुत प्राचीन था इसका उल्लेख मेगस्थनीज़ (Megasthenese) ने अपने भारत वर्णन मे किया है। मेगस्थनीज़ की पूरी पुस्तक लुप्त हो गई है, परन्तु उसको अन्य यूनानी (ग्रीक) लेखकों ने उद्धृत किया है। इन उद्धरणों का संकलन पटना कालेज के प्रिन्सिपल मैकक्रिन्डल ने अपनी अंग्रेज़ी पुस्तक (Megasthenese Indika) में किया है। उसमें तत्कालीन भारतीय समाज का एक खासा चित्र मिलता है। इन मालवों ने सिकन्दर के दात खट्टे किये थे। मालवों और यौधेयों के सम्मिलित निरोध के सामने सिकन्दर को झुकना और लौट जाना पड़ा था।

सिकन्दर के चले जाने के उपरान्त मौर्यों के शासनकाल में भारत को, बहुत समय तक, शान्ति–सुख मिलता रहा। मौर्यों की सत्ता के क्षीण हो जाने के काल में शकों, हूणों इत्यादि ने उत्तर–पश्चिम से टिड्डी दल की भांति आक्रमण किये और उन्होंने भारतीय संस्कृति को झकझोर डाला। मौर्यों के उत्तराधिकारी शुङ्गों ने, मध्यदेश के यवनों और उत्तर में आये

शक-हूणों का दमन करने के उपाय किये, परन्तु इन आक्रमणकारियों का प्रवाह थोड़ा ही अवरुद्ध हो पाया। धार्मिक विवादों से उत्पन्न कलहों ने समाज को बहुत अस्त व्यस्त और निर्बल कर दिया था। अनेक भारतीय बौद्ध शक-हूणों को आक्रमण के लिये निमन्त्रण देते रहते थे। कुछ कारण भी था। एक शुङ्ग राजा ने साची के कुछ बौद्ध स्तूपों को तुड़वा दिया था! विदेशी बौद्धों ने शैव और वैष्णव मन्दिरों को भङ्ग किया था!! शकों और हूणों के धर्म का यह हाल था कि जहा जाते वहीं के धर्म के बाहरी रङ्गरूप में रग जाते, परन्तु बर्बरता उनकी अक्षुण्ण रहती थी। उनके सिक्कों पर यूनानी, ईरानी, बौद्ध, शैव और वैष्णव मतों की खिचड़ी अंकित है! एक ओर कोई यूनानी देवता दूसरी ओर कोई भारतीय!

उस समय भारत मे गणतन्त्र, राजन्य, राजा और एकाधिकारी नरेश तक थे। प्रधान गणतन्त्र, मालवों, यौधेयों आरकों, उत्तमभद्रों इत्यादि के थे। जनसत्ता-नियन्त्रित राजन्य और राजा, विदिशा, कोशल, इत्यादि में और एकाधिकारी नरेश आन्ध्र, पाटलिपुत्र इत्यादि में। मण्डलेश्वरता की ओर राजनीति अनिवार्य रूप से अग्रसर हो रही थी। गणतन्त्रों में वाद-विवाद इतना बढ़ जाता था कि काम निबट ही नहीं पाता था, कभी कभी वितण्डावाद इतना हो पड़ता था कि बिना कुछ किये धरे ही सभा भङ्ग हो जाती थी। यौधेयों और मालवों का मेल था, परन्तु उत्तमभद्रों से इनकी शत्रुता थी। यौधेय नाम अब जोहियावार नामक राजपूतों में रह गया है, जो बहावलपूर और बीकानेर रियासतो के आस पास रहते हैं। उत्तमभद्रों के अवशेष भदौरिया ठाकुर जान पड़ते है। मालवों का पर्याय 'मल्ल' अब जयपूर, जोधपूर, इत्यादि के मारवाड़ी कहलाने वाले व्यापारियों के नाम भर के साथ रह गया है।

गणतन्त्रों मे धर्म सम्बन्धी कलह के अतिरिक्त तीव्र राजनैतिक मत-भेदों के कारण भी बहुत फूट रहती थी। शक इत्यादि बर्बर जातिया भारत में थोड़ी बहुत संख्या में तो ईसा से लगभग छः सौ वर्ष पूर्व से आ रही

थी, परन्तु उनको भारतीय समाज अपनी वर्ण व्यवस्था में सोखता रहता था। ईसा से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व से लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व के काल में उनके असंख्य प्रवाह विविध मार्गों से आये। जान पड़ता था कि आर्य सस्कृति डूबी और अब डूबी। आर्य संस्कृति में भूमि, जन और जनसस्कृति के समुच्चय को राष्ट्र कहते थे। ये तीनों महा सङ्कट में पड़ गये। भारत में युद्ध तो कहीं न कहीं सदा ही होते रहते थे परन्तु कृषक की भूमि, शान्ति, गाय और आस्था को कोई भी रौंद डालने की कल्पना तक न करता था। शिल्पी को भी कोई भी नहीं छूता था। व्यक्ति को स्वाधीनता इतनी थी कि मनचाहे देवता को अपनी श्रद्धा और भक्ति भेंट करता रहे—'इष्टदेव' की सज्ञा बनी ही इसी कारण होगी। शासन, चाहे गणतन्त्रीय हो चाहे अन्य प्रकार का हो, जन-जीवन मे हस्ताक्षेप बहुत कम करता था। चीनी यात्री फाहियान जो इस काल के कई शताब्दियों पीछे भारत में आया, कहता है—कि भारत में दास प्रथा नहीं थी। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि चाण्डाल इत्यादि अन्त्यज या अछूतो को नगरों और ग्रामों के बाहर रहना पड़ता था। आर्य संस्कृत में ग्राह्य के साथ साथ बहुत सा अग्राह्य भी वर्तमान था। शकों, हूणों इत्यादि ने सभी प्रकार की आर्य संस्थाओं पर घोर आक्रमण किया। ग्राह्य और अग्राह्य दोनों पर।

भारत भर में हल के नीचे की सम्पूर्ण भूमि का स्वामी कृषक होता और शेष अधिकार ग्राम के हाथ में। (H. S. Maine की पुस्तक Village Communities in East & West पृष्ठ १०४–१०५) किसान भूमि से बेदख़ल बहुत ही कम किया जाता था (उसी पुस्तक का १८६) शको ने भूमि का स्वामी अपने 'शाह' 'शाहानुशाह' (राजा) को घोषित किया। किसी से बेगार नहीं ली जा सकती थी। शकों ने बेगार की प्रथा चलाई तो आगे चलकर मध्यकाल के सामन्त—युग में फिर पनपी और मुसलमान—युग में फूली फली। शकों ने मन्दिर तोड़े, सुन्दर मूर्तियां खंडित कीं, गांव के गांव भस्मीभूत किये, गो ब्राह्मण का बध किया

विराट रूप में जन-संहार किया, दास बनाये, स्त्री बालकों की हत्या की और बड़ी संख्या में उनको अपना दास बनाया (स्त्री बाल गो द्विज घ्नाश्च पदारधनाहृताः)

शकों ने बहुत से शैव, बौद्ध, और जैन मतधारी भी हो गये थे, परन्तु उनकी जन-पीड़न की वासना नहीं मिटी। बहुत से यवन भी (ग्रीक) जैन हो गये थे—जैसे विन्ध्यशक्ति-यवन, आन्ध्र-यवन, परन्तु वे भी आर्य संस्कृति में अभी पूर्णतया संश्लिष्ट नहीं हो पाये थे।

जनतन्त्रों की टूट फूट में से राजन्य हुआ राजा—क्रमशः जनाधिप या नरेश। हिन्दू समाज जितना जितना अजर और निर्बल होता चला गया, उतने ही राजा सबल और वंश क्रमाधिकारी होते चले गये। विलासी भी। इनमें से कुछ आदर्श पालक और दृढ़ भी थे परन्तु सत्ता-प्रसार के मोह में परस्पर युद्ध भी करते रहते थे। इसलिये एकछत्रधारी सम्राट की आवश्यकता उस बिखरे हुये समाज को अवगत होने लगी।

अस्त व्यस्त और निर्बल समाज को व्यवस्थित, त्याग-भावना-रत और अप्रतिवार्य बनाने के लिये एक विशेष विचारधारा की आवश्यकता थी। बौद्ध धर्म से तत्कालीन समस्या के लिये यह नहीं मिल पा रही थी। इसलिये शैव मत का वह रूप उन्नत हुआ जिसमे त्याग, तपस्या और सङ्कट को नष्ट करने को प्रेरणा था, ऐसे नायकों का उद्भव हुआ जिनका इष्टदेव किसी से कुछ चाहता नहीं और जो देता सबको है प्रचुर वरदान। जिसका आवरण केवल भस्म है, चमत्कार के आडम्बरों से जिसको घृणा है और जो अपने भक्तों के शत्रुओं का कचमूर निकालने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं करता। ईस्वी सन् के सौ या डेढ़ सौ वर्ष पीछे वाकाटक और नाग इसी विश्वास और परम्परा से पुष्ट हो कर भारतीय राजनीति में अपनी विशालता लेकर आये। उस समय पुनः आये हुये शकों और हूणों की बर्बरता का उन्होंने विध्वंस किया और आर्य संस्कृति को पुनः स्थापित करके सन्यास में विलीन हो गये, अपने लिये कुछ नहीं

चाहा और न अपने वंश के राज्य स्थापित करने के मुग्ध–प्रयास किये। वे लोग इस सिद्धांत को पूर्णतया मानते थेः—

'सम्यक् प्रजापालनमात्र अधिगत राज्य प्रयोजनस्य'

पूर्ण रूप से प्रजा का पालन मात्र ही राज्य प्राप्ति का प्रयोजन हो सकता है। परन्तु पीछे तो ऐसे लोग हुयेः—

सर्वेयत्र प्रणेतारः वेंस पंडित मानिनः।
सर्वें महत्व मिच्छन्ति तद् वृन्दं ह्याशु नश्यति।

जहा सबके सब नेता बन गये हों, सब पाडित्य का अभिमान करने वाले सबके सब महत्वाकाची। बहा वे समूह का नाश कर डालते हैं।

इस मत के भीतर शत्रु—विनाश की जो उत्प्रेरणा थी वह साधारण जन के आत्म निग्रहो को यथास्थित न रख सकी और उसने बर्बरता तथा बीभत्स को समाज में उत्पन्न कर दिया। यह बात उस समय के लिये और भी अधिक लागू है जब ईसा के लगभग सौ वर्ष पूर्व शक इत्यादि बर्बरों ने बहुत बड़ी संख्या में प्रचण्डवेग के साथ निरन्तर आक्रमण किये और इस देश पर अपनी क्रूरताओं को बरसाया। इसकी प्रतिक्रिया हुई। उस प्रतिक्रिया का परिणाम कापालिक सदृश मतों का सृजन और विकास हुआ और उसमें शकों से भी बढ़कर क्रूरता ने जन्म लिया। आचार्य पुरन्दर ने ईसा से लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व शकों का दमन करने के लिये कापालिकों का सङ्गठन किया था। आर्य संस्कृति अपने ही जन की बर्बरता से काप उठी। उसी काल में हम उस वैष्णव धर्म का विकास और उत्थान देखते हैं जिसके इष्टदेव विष्णु—की चार भुजाये हैं, जिनकी गदेली मे शंख, गदा और पद्म हैं, रूप भी अत्यन्त मनोहर। संस्कृति की रक्षा के लिये शैव और वैष्णव–दोनो मतों की धाराओं का सामञ्जस्य और समन्वय हुआ। तत्कालीन वास्तु, स्थापित्व, और चित्र कलाओं में स्त्रैणता अंशतः भी नहीं है। पूर्ण पुंसत्वकला, साहित्य, आचार और राजनीति में। चित्रकार सुन्दर, सुदृढ़ और बलिष्ठ शरीर वाले पुरुष को

अपनी कूँची से उतारता था, सचेत मन और प्रबल-संकल्प। साहित्यकार अपने शब्दों में उसको मूर्त करता था और शिल्पी उसको पत्थर में पक्के थमे हुये कुशल हाथों से उभार देता था। स्त्रियों के प्रतिबिम्बों का भी सृजन ऐसा ही किया गया। भाषा मधुर और गौरवमयी, कृत्रिमता कम, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण, स्फुरणमयी। भारतीय जन में आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया। विष्णु के प्रति उसकी प्रगाढ भक्ति ने बाहुओं मे बल की बिजली दौड़ाई, विवेक को स्थिर रक्खा और उसने अपने बर्बर शत्रु को पछाड़ दिया। शैव, शक्ति और वैष्णव मंजुलता का समन्वय ईसा से पूर्व हो गया था। इस समन्वय ने मालवों, यौधेयो नागों इत्यादि को प्रेरणा और स्फूर्ति दी। शकों के ७५ वर्ष ईस्वी पूर्व, भयकर उपद्रवो का सामना करने के लिये एक जनपद नायक विकसित हो चुका था। उसने मालव इत्यादि गणतन्त्रों का संगठन किया। आन्ध्रों कारवों, और नागों का, उनके अपने अपने राजन्यों अथवा राजाओं के नेतृत्व में, सहयोग प्राप्त किया और शकों से टक्कर ली। ईसा से ५७ वर्ष पूर्व और विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ की यही गौरवपूर्ण घटना है। 'हंस-मयूर' नाटक का यही कथानक है।

'प्रभावक चरित' नामक एक जैन ग्रन्थ है जो तेरहवीं शताब्दि में लिखा गया था, विक्रम सम्वत् की स्थापना के लगभग बारह सौ तेरह सौ वर्ष पीछे। इस ग्रन्थ में उस समय का उज्जैनाधिपति गर्दभिल्ल बतलाया गया है। उसमें कहा गया है कि धारा नगरी के राजकुमार कालकाचार्य और राजकुमारी सरस्वती जैन धर्म प्रसार के लिये उज्जैन गये तो गर्दभिल्ल ने सरस्वती को, जो बहुत सुन्दर थी, बलपूर्वक पकड़ कर अपनी रानी बना लिया। कालकाचार्य क्रुद्ध होकर शकों की शरण में सिन्धुसौवीर और उसके सुदूर उत्तर में भी गया और शक आक्रमण-कारियों को लिवा लाया। शकों ने मालवतन्त्र को नष्ट करके उज्जैन पर अधिकार कर लिया। गर्दभिल्ल भाग गया और उसको किसी जगल में सिंह ने पकड़ कर खा लिया। मालव विजय पर शकों के नायक उषवदात

ने नासिक की गुफा में अपनी विजय को चिरस्मरणीय बनाने के लिये एक शिलालेख खुदवाया, जो इस प्रकार है:—

'गतोस्मि वर्षा-रंतु मालयेहि··हि ··रुधं उत्तमभद्रं मोचयितुं तेच मालया प्रनादेनेव अपयाता उत्तमभद्रकानं त्त्रियानं सर्वे परिग्रहा कृता।'

आरम्भिक शकों का जैसा खिचड़ी मेल धर्म था वैसी ही भाषा भी! एक ही लेख में संस्कृत और प्राकृत की खिचड़ी! उसका भावार्थ है, 'मैं वर्षा ऋतु की समाप्ति पर उत्तमभद्रों का उद्धार करने के लिये गया, जिनको मालवों ने (किसी गढ़ में) घेर रखा था। मालव मेरी हुंकार मात्र से भाग गये······।'

नासिक की ही एक गुफा में इसी उषवदात का दूसरा शिलालेख है जो उसने गुफा के भेंट करने के सम्बन्ध में खुदवाया था:—

'सिधं। बसे ४२ बैशाख्र मासे राञो छहरातस छत्रपस नहपानस जामातारा दीनीक पुत्रेन उषवदातेन संघस चातुदिसस इमं लेखं।'

'छहरात छत्रप नहपान के दामाद, दीनीक के पुत्र उषवदात ने संघ को यह गुफा लगाई।'

तेरह चौदह वर्ष तक उज्जैन पर शासन करते हुये शकों ने जो भयंकर अत्याचार जनपदों में किये, उससे यह धरा बिलबिला उठी। चतुरांश जनता को दास बनाकर अपने देश में भेज दिया। किसानों की भूमि छीनी, शिल्पियों का विनाश किया, कलाओं को भ्रष्ट, तथा नाना प्रकार की अवर्णनीय क्रूरतायें कीं—रक्त की तो नदियां ही बहा दीं। जैन या बौद्ध राजाओं के जहां जहां शासन थे वहां अहिंसा के प्रचार के लिये एक प्रकार की पुलिस रहती थी। यह पुलिस जनता को काफी त्रास दिया

करती थी। शकों ने बौद्ध वा जैन धर्म का आवरा ओढ़ इस—अहिंसा विभाग की ओट मे अश्रुतपूर्व भयानक अत्याचार और रक्तपात किये ! जूं या खटमल को मार डालने के अपराध में अपराधी को प्राण दण्ड की व्यवस्था उन्हीं की सूझ थी जो आगे के भारतीय राजाओं ने उनसे परम्परा और उत्तराधिकार में प्राप्त की । बेगार, छोटे छोटे से अपराधों के लिये हाथ पैर कटवा देना सब शकों की देन है ।

किसी महापुरुष के नेतृत्व मे संगठिन होकर जब आर्य जनपदों ने इन शकों का विध्वंस करके संस्कृति की पुनः स्थापना की - इसी पुनः स्थापना का सदर्भ उदयपूर वाले शिला लेख मे है—'मालवाना—गण स्थित्या''''—' तब मानो फिर से सतयुग आ गया ! बिलकुल संभव है उस महापुरुष का नाम या उपनाम कृत रहा हो जिसके नाम से विक्रम सम्वत् का आरम्भ हुआ । उस महापुरुष ने, न तो, अपना कोई राज्य स्थापित किया और न कोई वश । अपने अनेक महान पूर्वजो की भाति नाम की तनिक भी चिन्ता न करते हुये, वह भारतीय—गौरव—गगन मे समा गया । यही कृत 'हंस—मयूर' नाटक का इन्द्रसेन है । परन्तु आर्य-विजय की घटना का उल्लेख नासिक की ही गुफा में, मानो शकों के उस दम्भ का दमन करने के लिये जो उनके शिलालेख मे उत्कीर्ण है, शातकर्णि ने खुदवाया—

···सुविभत तिवगदेस कालस ।
शक यवन पल्हव निसूदनस ॥
धर्मोपर्जितकर विनियोग करस ।
कितापरोधेपि सतुजने अपाणहिसा रुचिस ॥
खखरात वंश निरवसेस करस ।

भावार्थ—'शकों, यवनों, पल्हवों और खहरातोंको ध्वस्त करके निर्वंश कर दिया, परन्तु धर्म की सर्वाङ्गीन स्थापना की—और बड़े बड़े अपराधी शत्रु जनों तक को अभय और रक्षा दी ! उनके साथ क्रूर वर्ताव नहीं किया, प्रत्युत उनको हिन्दू समाज और संस्कृति में सोख लिया ।' नाटक में

वर्णित पात्र पुरन्दर, रामचन्द्र नाग, नहपान, भूमक, उषवदात सब ऐतिहासिक हैं और उसी काल से सम्बन्ध रखते हैं। सरस्वती को सुनन्दा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वकुल कल्पित है, परन्तु उस समय के भारतीय यवनों का प्रतिबिम्ब है। उसी काल में या उसके लगभग एक विलक्षण नर्तकी, अभिनेत्री और गायिका का अस्तित्व मिलता है। नर्मदा काठे की गुफाओं में उसका नाम सुतनुका लिखा है। नर्मदा के भेड़ा घाट [भृगु घाट] पर दो बड़ी मूर्तिया पड़ी हुई हैं जो जान पड़ता है किसी शक कन्या ने बनवाई हैं। मैंने सुतनुका और उस शक कन्या का समन्वय 'हंस-मयूर' की तन्वी मे किया है। शकों की या यवनों की कन्याओं के साथ आर्यों का विवाह कोई नई बात न थी। नाटक की घटना के लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य ने सैल्यूकस ग्रीक की पुत्री के साथ विवाह सम्बन्ध किया था।

'हंस-मयूर' नाटक में तत्कालीन वेशभूषा, वस्त्रों और अलङ्कारों का वर्णन किया गया है, यदि उनका विशेष विवरण जानना हो तो अन्यत्र भी मिल सकता है। कपड़ों, विशेष कर पैजामे के सम्बन्ध में सन्देह हो सकता है कि यह प्राचीन हिन्दुओं की वेशभूषा में नहीं था। मैं इस बात को नहीं मानता। अलबेरूनी जब ग्यारहवीं शताब्दि के आरम्भ में आया था, उसको भी भ्रम हुआ था। उसने अपने ग्रंथ 'किताबुल हिन्द' [अंग्रेज़ी अनुवाद के प्रथम खण्ड का पृष्ठ ९७] में लिखा है कि हिन्दू लोग मुसलमानों की तरह के कपड़े पहिनते हैं—साफ़ा बांधते हैं, इत्र मलते हैं, नाना प्रकार के रंगे कपड़ों से अपने शरीर को सजाते हैं और उनके पैजामे इतने लम्बे होते हैं कि एड़ी तक ढक जाती है! [उसी खण्ड का पृष्ठ १८१] अजन्ता की गुफाओं में जो चित्र आज भी प्राप्त हैं उन में बच्चे जांघिये पहिने हैं. और कुछ पुरुष पिंडलियों तक के आधे पैजामे और कुछ पूरे। जाघिये के लिये 'जघ' शब्द वैदिक सस्कृत में है। अलबेरूनी ने अपने उस ग्रंथ में हिन्दुओं के उन आचारों का भी वर्णन किया

है जिनको भूमक ने इस नाटक में ३५वें पृष्ठ पर प्रकट किया है। [पृष्ठ १८१ भाग १] अजन्ता की गुफाओं के चित्र अलबेरूनी के लेख से सैकड़ों वर्ष पहले बन चुके थे पिंडलियों तक 'के 'टाप बूटों' सदृश जूते और झिलम टोप खजुराहो के सूर्य मन्दिर [चित्रगुप्त मन्दिर] की शिलाओं पर आज भी उत्कीर्ण देखे जा सकते हैं। मैंने इसका विव-रण 'हंस–मयूर' में नहीं दिया है।

मैंने नाटक के अन्तिम अङ्क में चुनाव की परिपाटी का कुछ विवरण दिया है। उसका सविस्तार वर्णन डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल की पुस्तक हिन्दू राज्य तन्त्र (Hindu Polity) में मिलेगा इसका अनुवाद हिन्दी में होगया है। भारतीय सङ्गीत का विकास ईसा से तीन सौ वर्ष पहले ही पर्याप्त रूप में हो चुका था। जिन रागों का उपयोग मैंने नाटक में किया है वे हमारी संस्कृति के इतिहास से असगत नहीं हैं।

उस प्राचीन काल के समाज के रूप को रङ्गमञ्च पर लाने के लिये अभिनयकर्त्ताओं को थोड़ी सी सावधानी के साथ उस काल के इतिहास की—विशेषकर कला के इतिहास की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। मैंने तत्कालीन भावों और वाञ्छाओं को नाटक में उतार लाने का प्रयत्न किया है, परन्तु नाटक दृश्य–साहित्य है इसलिये नाटककार को अभिनय-कर्त्ताओं के कौशल का पूरा सहयोग चाहिये।

देश में ऐसे नाटकों की बड़ी आवश्यकता है। जो पढ़े जाने योग्य तो हों ही, परन्तु मञ्च के लिये भी उपयुक्त हों। उतनी ही आवश्यकता इस प्रकार के साहित्य की चित्रपट जगत के लिये भी है, जिसमें इतिहास और चरित्र चित्रण की नब्बे प्रतिशत उपेक्षा की जाती है। मैंने जब 'विक्रमादित्य चित्रपट देखा तब मन में इतनी ग्लानि हुई कि उसकी समानता उसी ग्लानि से की जा सकती है जो मुझको 'चन्द्रगुप्त मौर्य' चित्रपट को देखने के कारण हुई थी। मैंने इन दोनों चित्रों की कठोर आलोचनायें पत्रों में प्रका-शित की। कदाचित ही किसी चित्र निर्माता ने उन आलोचनाओं को पढ़ा

हो, एक या आधे ने पढ़ा होगा। तो मुझको एक चिनौती मिली—हम ऐतिहासिक चित्र बनाने में यदि इतिहास का नाश करते हैं तो आप ही एकाध नाटक लिखिये। उस चिनौती का उत्तर यह नाटक है। परन्तु मैं इस बातको मानता हूँ कि यह नाटक उनके लिये नहीं लिखा गया है, क्यों कि उन लोगों के स्टूडियो ऐसे नगरों में हैं जहा बड़े बडे पुस्तकालय हैं और जिनमें इतिहास सम्बन्धी पुस्तकें पर्याप्त संख्या में हैं तथा विचित्रालय (Museum) भी। विचित्रालय तो सहज ही देखे जा सकते हैं और चित्रनिर्माता उन्हें देखने का कष्ट भी करते हैं, परन्तु पुस्तकालय? पुस्तकालय में सिरखपी कौन करे? वे जानते हैं कि हमारी अधिकाश जनता को अपने इतिहास और पुरानी संस्कृति का यथेष्ठ परिचय नहीं है। इसलिये उस जनता के इस अज्ञान का वे लाभ उठाते हैं। परन्तु वह समय निकट है जब चित्रनिर्माता उस अज्ञान का सहज लाभ प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

मैंने 'हंस-मयूर' नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर 'प्रभावक चरित्र' वर्णित कालकाचार्य कथानक का उपयोग किया है। जान पड़ता है ईसा से लगभग ७५ वर्ष पूर्व मालवगणतन्त्र की अव्यवस्था ने पहले राजन्य और फिर राजा को उत्पन्न किया। गर्दभिल्ल इसी प्रकार का राजन्य या राजा था। सरस्वती (नाटक की सुनन्दा) के साथ गर्दभिल्ल का बलात् विवाह मुझको मान्य नहीं है, परन्तु गर्दभिल्ल के प्रणय ने जो रूप या मार्ग लिया होगा उसके सम्बन्ध में कालकाकार्य को भ्रम होना स्वाभाविक और उसके स्वाभाव के संगत जान पड़ता है। नाटक में इसी भ्रम का समर्थन है। कालकाचार्य ने अपने स्वभाव का जो परिचय नाटक के दूसरे दृश्य में दिया है वह इतिहास सम्मत है। (जायसवाल का 'हिन्दू राज्य तन्त्र' पृष्ठ ५२) कालकाचार्य ने शकों को लाकर उज्जैन और मालव जनपद का नाश कराया, उसके लिये दो उपादान ग्राह्य हैं—एक तो उत्तम भद्रों और मालव-यौधेयों का बैर, जिसका संकेत उषवदात के नासिक गुफा वाले शिलालेख में हैं; दूसरा कालकाचार्य की प्रतिहिंसा, जो गर्दभिल्ल-सुनन्दा के प्रणय-भ्रम से उत्पन्न हुई थी। शकों की विजय के परिणाम

को अपनी आखों देखकर कालकाचार्य से फिर उज्जैन में न रहा गया और वह दक्षिण-पश्चिम में धर्म-प्रचार के लिये चला गया।

इस नाटक की भाषा मेरे अन्य नाटकों-और उपन्यासों की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट है। उस युग की माग के कारण मुझको ऐसी भाषा का उपयोग करना पड़ा। परन्तु हिन्दी की उत्तरोत्तर सर्व-प्रियता के समय मे यह भाषा पाठकों—और दर्शको की भी समझ मे आ जानी चाहिये।

श्यामसी
२१-९-४८

वृन्दावनलाल वर्मा

नाटक के पात्र

पुरुष—

गर्दभिल्ल—उज्जैन का राजा

पुरन्दर—उज्जैन के कापालिकों का आचार्य

कालक—धारानगरी का राजकुमार, धर्माचार्य

इन्द्रसेन—नलपुर जनपद का नायक, बाद का नाम कृतसेन

रामचन्द्र नाग—विदिशा का नाग-राजा

वकुल—एक यवन साधु। कालकाचार्य का शिष्य

कुजुल—ऋषिकों और हिगुणों का महाक्षत्रप

भूमक—शक जाति की क्षहरात शाखा का एक नायक, क्षत्रप

नहपान— ,, ,, एक और क्षत्रप

उषवदात— ,, ,, नहपान का दामाद

द्रागिक, सैनिक, दण्ड पाशिक, चाट, मद्य पिलाने वाला (शौण्डिक)

एक राजा, कच्छप दस्यु नागरिक, कापालिक।

स्त्री—

सुनन्दा—कालकाचार्य की बहिन, बाद की सरस्वती

तन्वी—शकनायक भूमक की पुत्री

सखिया, नर्तकिया, चमर वाहिकाये इत्यादि

समय—विक्रम सम्वत् के लगभग १० वर्ष पूर्व से सम्वत् प्रारम्भ तक।

* नान्दी *

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते
भवन्तिभूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥१॥

[विष्णु पुराण]
[२ । ३ । २४]

देवता स्वर्ग मे भी यह गीत गाते हैं—धन्य हैं वे लोग जो भारत भूमि मे उत्पन्न हुये हैं। वह भूमि स्वर्ग से भी विशिष्ट है, क्योंकि वहा स्वर्ग और मोक्ष दोनों की साधना की जा सकती है। जो देवत्व भोग चुकते हैं वे मोक्ष के लिये पुनः भारतवर्ष मे जन्म लेते हैं, जहा के आदर्श अपवर्ग की प्राप्ति में कारणभूत हैं।

हंस-मयूर

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्थान—धारा नगरी से कुछ दूर का बनखण्ड। समय संध्या से पूर्व। आगे २ कालकाचार्य, सुनन्दा, श्राविका और वकुल श्रमण और उनके पीछे २ धारा नगरी का राजा तथा कुछ नागरिक गाते हुये आते है। आचार्य कालक और वकुल सिर मुडाये है और गहरे नारंगी रंग का कोपीन पहने है। सुनन्दा की भी कोपीन इसी रंग की है। उन तीनो की देहो पर किसी प्रकार का आभूषण नही है। भिक्षा का एक एक कमण्डल हाथ मे लिये है। नागरिको मे पुरुष विविध भांति के वस्त्र धारण किये है कोई केवल उष्णीष, कुर्तक, कंचुक और धोती पहने है, कोई केवल धोती, उत्तरीय प्रावार से शरीर ढके है। नारियां रंग बिरंगी साड़िया पहने है और केशकलाप किये है। नर नारी—सब—कर्ण, ग्रीवा तथा भुजाओ को अलङ्कारों से सजाये हुये है। राजा वृद्ध हैं, परन्तु स्वस्थ। सब नागरिक स्वस्थ और दृढ़ शरीर है। कालकाचार्य की आयु लगभग चालीस वर्ष की है। वह गम्भीर और निश्चय-वृत्ति वाला है। भ्रूमध्य का संकुचन बतलाता है कि यह भयानक भी हो सकता है। वकुल भारतीय यवन है। रंग गोरे से कुछ ही हलका आकृति सुन्दर। आँख चपल

मुद्रा सक्रिय। आयु लगभग १८ वर्ष। अभी उसकी आंख लग ही रही है। सुनन्दा की आयु लगभग पन्द्रह वर्ष की है। अति सुन्दर है। होठों पर दृढ़ता है और आखों मे सहसा प्रवर्तन, जो धर्म और वर्ग के निशेधों के कारण दब दब कर उभर उभर पड़ता है। नागरिकों में कोई बांसुरी, कोई बीणा, मंजीर, स्वरमण्डल और मृदङ्ग लिये हैं। ये वाद्य गीत का साथ दे रहे है]

❀ गीत ❀

(हम्मीर राग)

बन पर्वत जन पद मधुघोले
उमग भरी मुस्कानों बोले—
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,
जीवन-क्रम का हो यह निकाय।
अहंकार पर जय होते ही,
वर्चस ने अपने पर खोले:
बन पर्वत जनपद मधुघोले
उमग भरीं मुस्कानों बोले—
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,
बिखरित करना है दया, न्याय।

कालकाचार्य—(*गीत की समाप्ति पर*) राजन्य—(*थोड़ा सा झटका खाकर*) पिताजी, अब आप लौट जायं। दूर निकल आये हैं। धारा नगरी के नर नारियो, आप सब और अधिक कष्ट न करके अपने अपने निवास को जायं; भगवान के आदेशों का स्मरण करते रहें और उनको बर्तते रहे।

राजा—वत्स! (*तुरन्त दृढ़ होकर*) आचार्य कालक! जनता के हित के लिये, जनता के सुख के लिये, देवताओं और मनुष्यों के आनन्द के लिये विचरण करो। आरम्भ में कल्याण, मध्य में कल्याण और अन्त

में भी कल्याण करने वाले धर्म का, अर्थ और भाव सहित उपदेश करके सर्वांश में पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।

सब—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

कालकाचार्य—भद्रो! यदि भगवान का सन्देश देते देते, जनता को ज्ञान के मार्ग पर लाते लाते, हमारा शरीर भी क्षय हो जाय तो हमारी सुगति हो जायगी।

सुनन्दा—हमलोग, भगवान की शिक्षा जनता में भर देंगे। अनपवाद अनपघात, सयम, एकान्तवास और चित्तवृत्तियों का नियन्त्रण ये सब, हम जनता को साधना के साथ सिखलायँगे।

राजा—(*सुनन्दा को मोह की दृष्टि से देखकर*) सुनन्दा कितनी विवेकमयी है? कालक! आचार्य कालक! सुनन्दा की आयु मुझको थोड़ा सा व्यथित करती है।

कालकाचार्य—राजन्य! आशङ्का न करें। आशङ्का मोह का दूसरा नाम है। हमको मोह न करना चाहिये। मोह एक दूषण है। हमको मोह से निष्कृति पानी चाहिये।

राजा—तुम मलावों में जा रहे हो हम उत्तमभद्रों का उनसे मनोमालिन्य है। तुम त्रिदिशा के नागों में जाओगे; वे हमारे शत्रु हैं। तुमको दस्यु कच्छप और मनुष्य भक्षी बनवासी बर्बर जातियां मिलेंगी। मैं तुम्हारे ज्ञान और पुरुषार्थ को जानता हूं परन्तु (*गद्‌गद् कठ से*) सुनन्दा अल्पवयस्क और अति सुकुमार।

सुनन्दा—मेरी आत्मा न तो थोड़ी आयु की है और न वह निर्बल और अदृढ़ है।

कालकाचार्य—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

सब—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

(*नागरिकों के मन में स्वास्थ्य, शक्ति और उल्लास की लहर सजग है, परन्तु वे गम्भीर बनने का प्रयत्न करते हैं*)

कालकाचार्य—राजन्य ! मैं फिर कहता हूं कि आप मोह को त्याग दें हम लोग उज्जैन, विदिशा, महेशुरपुर, कालञ्जर पद्मावती इत्यादि जनपदों में भगवान का उपदेश सुनायँगे। हमारे क्षणभंगुर शरीर की आपको चिन्ता न करनी चाहिये।

एक नागरिक—मैं पूछता हूँ, क्या ये जनपद फिर अन्धकार में समा गये हैं? क्या वहां धर्म और संघ की महिमा लुप्त हो गई है?

कालकाचार्य—मैं बतलाता हूँ भद्र ! तेरह कोस लम्बी और नौ कोस चौड़ी उज्जैन नगरी में कापालिकों के जीव-बलिदानों और वहां के राजा गर्दभिल्ल के पिशाचपन ने उस पावन नगरी, विद्याओं के पीठ को पाप प्लावित कर रखा है। विदिशा के नाग सर्पों की पूजा करते हैं। ब्राह्मण द्वारा यज्ञों में पशुमेध कराते हैं; नलपूर और भद्रावती में उत्तम भद्रों के गणों का शासन होते हुये भी कच्छप डाके डालते हैं और नर-बलि में रम लेते हैं, कालञ्जर में ब्राह्मणों ने बहुत सिर उठा रखा है—

सुनन्दा—और पद्मावती में शकों ने बौद्ध और शैव मतों को मानो परस्पर विभक्त कर लिया है। दोनों मिलकर आर्य व्यवस्था को मिटाना चाहते हैं। हम उनको सुमार्ग पर लायँगे।

राजा—शक हम उत्तमभद्रों के मित्र हैं। वे, विदिशा के राजा रामचन्द्र नाग से सब बातों में उत्कृष्ट हैं, जो वर्ण-व्यवस्था को बनाये रखने की आड़ में महा कुकर्म करता रहता है।

कालकाचार्य—वह शुङ्गों का उत्तराधिकारी जो ठहरा, जिन्होंने निस्सहाय बौद्धों के तीर्थ-स्थान सांची के स्तूपों को ध्वंस्त कर डाला था हम विशुद्ध जैन धर्म के उपदेशों द्वारा उन सब प्रदेशों को स्वच्छ और शुद्ध करेंगे—सच्चे आर्य धर्म की रक्षा करेंगे।

राजा—प्यारे नागरिको, इन तीनों को आशीर्वाद दो। संसार में पापों की कालिमा बिछी हुई है, ये उसको उज्वल करने में सफल हों।

नागरिक—स्वस्ति ! स्वस्ति !!

वकुल—हम लोग पहले उज्जैन जायगे और सबसे पहले वहा के व्यसनी, दुराचारी शैव राजा गर्दभिल्ल का परिष्कार करेंगे।

सुनन्दा—वेत्रवती, क्षिप्रा, चर्मण्यवती, सिन्धु, नर्मदा, मधुमति, पुष्पजा इत्यादि नदियो की उपत्यकाओ मे घूम घूमकर वन पर्वतो को भगवान के उपदेशों के मधुर मधु से भर देंगे।

राजा—सुनन्दा, तुम आचार्य और वकुल का साथ छोड़कर अकेली कहीं न जाना। व्यर्थ कष्ट मत झेलना।

वकुल—आचार्य का यह शिष्य साथ में, फिर आचार्य या श्राविका सुनन्दा को कष्ट!

सुनन्दा—चिन्ता और मोह को छोड़िये, राजन्य। मै यदि मारी जाऊगी तो पूर्व जन्म का कर्म फल गल जायगा और मै मोक्ष पा जाऊगी।

कालकाचार्य—संघ मे आयु किसी अन्तर या परिस्थिति का कारण नहीं बनती। राजन्य, आप सुचित्त हों। कष्ट हम लोगो का कुछ नहीं कर सकते। गुरु की आज्ञा है—सैनिको, ब्राह्मणों, उत्पातियों, याचको, हत्यारो और लुटेरों मे सामञ्जस्य और समान निग्रह के भाव के साथ पैठ करो। अपकार के आदान मे उपकार प्रदान करने से जो मनोबल बढता है उसकी मात्रा आंकी नहीं जा सकती।

एक नारी—कोई इन सुन्दर साधुओ को मार न डाले!

दूसरा—ठठ्ठा है मार डालना। हम उत्तमभद्र, पद्मावती के शक और उनका क्षत्रप घटाक तथा सिन्धुसौवीर के हमारे अनेक शक क्षत्रप मित्र कहां जायगे?

कालकाचार्य—सुचित्त! नगर निवासियो, सुचित्त!!

राजा—मालव, यौधेय और आरक—ये तीनों गण हमारे पुराने शत्रु हैं। यदि इनमें से किसी ने भी इन वीतरागियों का अहित किया तो—

कालकाचार्य—न्याय और तर्क द्वारा सब प्रकार की कलह शान्त की जा सकती है। उत्तमभद्रों और इन तीनों गणों में परस्पर मैत्री

स्थापित करवाने का मै उपाय करूगा। उन लोगों के भ्रमों का उच्छेदन हो जायगा।

एक नागरिक—उस प्रकार के भ्रमों का अधिक प्रबल उच्छेता म्यान से निकला हुआ खड्ग और धनुष की डोरी पर चढ़ा हुआ बाण ही होता है।

कालकाचार्य—सावधान! शान्त!! नागरिक! हिंसा से निरत होने का साधन हिंसा नहीं हो सकती। हमारे संघ ने इन सब को भव्य और संस्कृत करने का संकल्प कर लिया है। भगवान का उपदेश सुनकर ये दैत्य मार्ग को छोड़कर दिव्यता को पा जायंगे।

सब—स्वस्ति। स्वस्ति॥

राजा—स्वस्ति। असुर पर सुर की विजय होगी। इन्द्र, कुबेर और वसु इन साधुओं की पूजा करेंगे।

कालकाचार्य—भद्रो, हम लोग आपकी कृपा और आशिष के आभारी हैं। अब आप लौट जाय। (*मुस्कराकर*) यह थोड़ा सा समय इस वनखण्ड मे कल्याणकारी चर्चा मे व्यतीत हुआ है। अभी संध्या होने में विलम्ब है, पर हमारे पहले विश्राम का विहार अभी दूर है और आप लोग धारा नगरी से बहुत बाहर निकल आये हैं।

सब—कुशलमस्तु।

(राजा नीचा सिर कर लेता है और खिन्न होकर लौटता है। नगर निवासी संयत आल्हाद में है। वे सब प्रणाम करके धीरे धीरे लौट पड़ते हैं। पहले वे तीनो चले जाते है, फिर नगर निवासी। इन सबके चले जाने पर वे तीनों फिर आ जाते हैं)

सुनन्दा—आचार्य! क्षिप्रा तो बड़ी सुन्दर होगी?

कालकाचार्य—सरिता सुन्दर है, परन्तु उसके तट पर रहने वाले क्रूर हैं। जैसे कामना और वासना, विनय और आकांक्षा कमल-परिमल और दुर्गन्ध, पुचकार और ताड़ना, तथा कल्पना और सम्भा-वना एक नहीं होती वैसे ही क्षिप्रा का सौन्दर्य और वहां के राजा

गर्दभिल्ल का कुरूप एकरस नहीं हो सकते। इनको सुसंगत करना है, व्यवस्थामय।

वकुल—सुना है मालवों के महवर्गी कच्छप और आरक उत्तमभद्रों की सीमा और भूमि के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रखते। लुटेरी और बटमारी करते हैं, बलिदान के लिये बालक और बालिकाओं को चुरा ले जाते हैं; ग्रामों में आग लगाते हैं। विन्ध्यप्रदेश के हमारे दशार्ण-खण्ड में यह सब नहीं हो पाता।

सुनन्दा—वहां भगवान के उपदेशों का अधिक आदर होगा।

वकुल—हां बहिन, जैसा मनोहर उपदेश वैसा ही मनोहर प्रदेश। मनोरम हरी भरी घाटियां। उपत्यकाओं की सरस मञ्जुल दूब मुस्काती हुई और दूब की दमकती हुई ओस पर हँसती नाचती हुई रवि रश्मियां—

कालकाचार्य—इस वासना लिप्त उद्गार से मन को विरक्त करके केवल उस वचन के स्मरण पर स्थिर करो—'बहुजन हिताय; बहुजन सुखाय'

वकुल—(*संकुचित होकर, बड़बड़ाते हुये*) 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'।

कालकाचार्य—हां ऐसे ही। (*पश्चिम की ओर देखकर*) सूर्यास्त में विलम्ब नहीं है। दूर तो बहुत निकल आये हैं, परन्तु अभी अपने विहार के निकट नहीं पहुँचे हैं।

सुनन्दा—आचार्य! मुझसे एक मिथ्या विचार का दोष हो गया है। कह देने से मुक्त हो जाऊँगी?

वकुल—चूक मुझसे भी हो गया है।

कालकाचार्य—धर्म चर्चा का निरन्तर करते रहना महा मङ्गल है। कह डालो।

सुनन्दा—जब उज्जैन के राजा गर्दभिल्ल की चर्चा हो रही थी तब मेरे मन में आया था—उसको निकाल कर प्रसाद में विहार स्थापित

करूंगी और वही रहूगी। यह मिथ्या विचार है हमको प्रसादो से कोई प्रयोजन नहीं।

कालकाचार्य—तुम दोषमुक्त हुई।

वकुल—और मेरे मन मे आचार्य यह उठा था कि जितने दस्यु, बटमार, हत्यारे और कापालिक हैं—गर्दभिल्ल समेत,—उन सबको खड्ग के घाट उतार दूँ।

कालकाचार्य—तुम भी दोष मुक्त हुये।

(*नेपथ्य मे खड़बड होती है*)

सुनन्दा—(*चौंककर*) वन मे यह कैसा शब्द है आचार्य ?

वकुल—कुछ पैरों की आहट जान पड़ती है। प्रकाश बहुत कम रह गया है।

कालकाचार्य—(*ठिठककर, परन्तु संयत स्वर मे*) होगा। हम लोग मुनि हैं। कोई चिन्ता नहीं, चले चलो।

(*वे लोग बढ़ते है*)

(*वृक्षों के झुरमुट मे कुछ दस्यु यकायक आ जाते हैं। वे सशस्त्र है। दस्यु उष्णीष, कतर्क और जांघिये पहिने है। उनके आने के पहले ही सुनन्दा एक पेड के पीछे छिप जाती है।*)

कालकाचार्य—बन्धुओ, क्या योजना है ?

दस्यु सरदार—बन्धुओ नहीं, बापुओ कहो। तुम लोग उत्तमभद्र हो न ? (*वकुल सिकुडता है*)

कालकाचार्य—थे—अब श्रमण हैं। कौन हो ? क्या चाहते हो ?

दस्यु सरदार—हम लोग नलपुर जनपद के कच्छप हैं और मालवों के अतिथि। तुम्हारी सीमा में कुछ मौज के लिये आ पडे हैं। कच्छप नाम ही हमारा और हमारे रगढंग का पूरा-समूचा परिचय दे देता है। (*सुनंदा को झांकते हुये देखकर*) अच्छा! एक और भी है!! इधर आओ तुम!!!

(सुनदा आजाती है ।)

कालकाचार्य – हम लोग त्यागी विरागी हैं ।

(सुनंदा भयभीत है ।)

दस्यु सरदार—ओह लड़की है । तुम निर्भय रहो तुमको कोई नहीं छुयेगा ।

वकुल—हम तीनो साधू हैं ।

दस्यु सरदार—समझते थे कोई अच्छी चिड़िया हाथ लगेगी, परन्तु सगुन बिगाड़ने को बदे थे हमारे भाग्य मे तुम ! इसलिये हे दोनों घुटमुन्ड, मुस्टन्ड सुखमरे, ये कपडे उतारो. नगाझोरी दो और लँगोटी तथा कमण्डल के साथ यहा से अपने जनपद की ओर खिसक जाओ । यदि यहा तुम दूसरों को घुटमुण्ड बनाने के लिये कुछ और ठहरे, तो, हम तुम्हारी हड्डियों को काली माई की भेंट करेंगे ।

कालकाचार्य—(निर्शंकिता के साथ) हम मरने से नहीं डरते ।

दस्यु सरदार—परन्तु कपड़ों का त्याग करने से तो डरोगे ?

कालकाचार्य—उससे भी नही भयभीत होते । हमको डर लग रहा है तुम्हारी आत्मा की भावी दुर्गति का ।

दस्यु सरदार—आत्मा के बच्चे उतार कपडे । कपड़ों की किसी सीवन में, या कहीं नीचे, छिपाये होगा मुद्रायें या सोने की जयमाला । उतार, उतार ! दे नगाझोरी !!

कालकाचार्य—(निर्भयता के साथ) सुनो बन्धुओ ! यह जीवन कितने दिन का है ? उस समय की बात सोचो जब तुम्हारा यह फूला हुआ शरीर हाड़ों का ढांचा मात्र रह जायगा । ज्ञान की ज्योति से अपने भीतर के तम को भगाओ, तथा—

दस्यु सरदार—तथा के भूत, ऊल-जलूल मत बक । यह सब उत्तम भद्रों को सिखलाया कर । इस विन्ध्याचली छोर की कन्दराओं में इस प्रकार की सब बकवास न जाने कहा समा जाती है । उतार कपड़े नहीं तो देता

छू दो ठूंसे नाक पर जहां से बह पड़ेगी लाल लाल ज्योति की धारा, और टपक पड़ेंगे दो चार दात यदि मुँह में हों तो। *(मुक्का तानता है।)*

कालकाचार्य—बन्धुओ, कुमार्ग को छोड़ो—

दस्यु सरदार—परन्तु तुम इस बन पर्वत को छोड़कर अपने उत्तम भद्रों की ओर काला मुँह न करोगे। पटक दो जी इसकी और उतारो इनके कपड़े !! फिर उत्तम भद्रों के कुछ गाव लूटने हैं—और न लूट सके तो आग लगाने से तो चूकने वाले नहीं। सावधान कर देना रे अपने घुटमुन्डे भाइयों को।

वकुल—ओह ! न हुआ हाथ में खड्ग !!

(उन दोनों से दस्यु चिपट जाते है और लङ्गोटी के सिवाय उनके सब कपड़े छीन लेते है। सुनन्दा घबराकर मुँह ढांक लेती है। वकुल के कपडो मैं कुछ चांदी की और ताम्बे की मुद्रायें मिलती हे)

दस्यु सरदार—(*प्रसन्न होकर*) हमने कहा था न कि कपड़ों में मुद्राये खोसे होगा। जाओ बेटा अब।

वकुल—बन्धुओ ! हमको कुछ तो लौटा दो। हमको दूर की यात्रा करनी है। मार्ग व्यय ही दे दो पाथेय के लिये।

दस्यु सरदार—अच्छा ताम्बे की मुद्रायें ले जाओ। भागो नहीं तो मेरा मन बदल जायगा।

कालकाचार्य—मत लो मुद्रायें। भगवान इनका भला करे।

(वे तीनो चले जाते हैं।)

दस्यु सरदार—(*हँसकर*) जीवन थोड़े दिन का है ! हो, हो ! हाड़ों का ढाचा !! हो, हो !!!

दस्युसरदार—(*हँसकर*) और ज्ञान की ज्योति से भीतर के अंधेरे को भगाओ ! हो, हो !!

राव—(*हंसकर*) भगा दिया। भगा दिया।

(वे सब हँसते हुये जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

[स्थान उज्जैन। महाकाल के मन्दिर के सामने का मैदान। इधर उधर छायादार वृक्ष। एक ओर कन्दरा। बीच बीच में मङ्गल घटो पर कदली मण्डप, तोरण और वितान। थोड़ी दूर क्षिप्रा नदी बह रही है। कुछ दूरी पर चौड़े सकरे मार्गों वाला नगर। उत्सव के कारण मैदान में भीड़ भम्भड़। एक स्थान पर कुक्कट लड़ाये जा रहे है। पुरुष रग बिरंगे कुर्तक, कंचुक, धोतियां पहिने हुये है। कोई उष्णीष बाधे हैं और कोई नंगे सिर है, सिर के बाल पीछे फहराने वाले। गले में हार, कानो में कुण्डल, भुजाओं पर भुजबध और कमर में करधनी। पैरो में नोकदार जूते जिनके पीछे का भाग पिंडली के मध्य तक आकर लौट गया है—जैसा कि विन्ध्यखंड में ग्रामीण अब भी पहिनते हैं। कोई कोई सटे पेजामे भी पहिने हैं। कमर में खड्ग और पीठ पर ओढ़ी ढाल है। जो वयस्क है वे दाढ़ी रक्खे हैं। कुछ नगे पांव हैं—केवल धोती पहिने और उत्तरीय ओढ़े हुये। माथे पर लगभग सबके त्रिपुण्ड हैं। स्त्रियां कन्चुकी और साड़ी या लहंगा पहिने हैं। गले में हार बनमाला माथे पर बिंदी और किसी के ललाट पर स्वर्ण पटबन्ध। कुछ केश कलाप पर पुष्प किरीट। किसी किसी के केश बन्धनों से बाहर छिटके हुये। जिनकी गुथाओं में स्वर्ण की रत्नजटित लड़ें गूँथी गई हैं। कानों में विविध प्रकार के कर्ण-फूल। गले में मोहन माला। हाथों में चूड़ी, कंकण और मङ्गल-मोहन। कमर में किंकणी और आधी जांघों तक झूलती हुई मेखला। पैरों में कड़े, तोड़े, पायल और नूपुर। स्त्री पुरुष सब स्वस्थ, पुष्ट और प्रसन्न]

नेपथ्य में बीणा, स्वर-मण्डल, बासुरी और मञ्जीर के साथ गायन—

ॐ नमः शम्भवायच मयो भवाय च
ॐ नमः शंकरायच मयस्कराय च
ॐ नमः शिबायच शिवतराय च।

(एक ओर से कुछ स्त्रियों का गायन और नृत्य करते हुये प्रवेश)

❀ गीत ❀

(राग-धानी)

भरे कलश घर आये,
मङ्गल साज सजाये,
मणि मुक्ता से झलक रहे हैं;
दामिनि द्युति से दमक रहे हैं।
रत्नों द्वार रचाये, जनमन मोद समाये;
भरे कलश घर आये,
मङ्गल साज सजाये।

एक स्त्री—मैं तो नाचते नाचते थक गई। थोड़ा विश्राम करूँ।

दूसरी स्त्री—मेरा शरीर तो नहीं, परन्तु मन नाचने से थक गया। उस सामने वाले बड़े कदली-मण्डप का खेल अभी आरम्भ नहीं हुआ?

पहली स्त्री—खेल कहती हो उस क्रिया को! वह तो जीवित समाधि लेगा; साँस टूट गई तो मरा! तुम उसे खेल समझती हो-!!

दूसरी स्त्री—खेल न सही बाई, संकट सही। परन्तु यह निश्चय है वह मरेगा नहीं, क्यों कि इतने बड़े उत्सव में मरने के लिये यहा कोई नहीं आयगा। मुझको अचम्भा होता है वह इतनी लम्बी साँस, इतनी देर तक कैसे साधता होगा। क्या वह अपनी क्रिया को समझावेगा भी, या सब गुप-चुप ही करेगा?

पहली स्त्री—तुम सीखोगी।

दूसरी स्त्री—क्यों, क्या हो गया? जो काम पुरुष कर सकते हैं वह स्त्रिया भी कर सकती हैं। बौद्धों का एक मठ यहा है न? उसमें तो स्त्रियां न जाने क्या क्या क्रियायें करती हैं।

पहली स्त्री—अरे रे, वे तो हँसती नहीं हैं। बोलती हैं तो ऐसे जैसे किसी ने होठ सीं दिये हो। हम को तो ऐसी क्रिया नहीं सीखनी।

दूसरी स्त्री—पुरुषों की समानता करने चली थीं, अब झिझक उठीं न?

पहली स्त्री—अरी, हम लोग घर द्वार छोड़कर क्या मठो की गुम सुम भुगतने को जन्मी हैं? सीखें नहीं, पर जान तो लें कि जीवित-समाधि कैसे ली जाती है।

दूसरी स्त्री—अरी बाई, इन लोगो ने यह सब छिपा कर रक्खा है। कहते हैं गुप्त रक्खो, गोपनीय है। ऐसा इसमें क्या है जिसे ये छिपाते होंगे?

पहली स्त्री—दूसरों को हानि पहुँचाने की उस क्रिया मे कोई शक्ति होगी इसलिये छिपाते होंगे।

दूसरी स्त्री—ओ-हो तुमको तो सब शास्त्र पढ़ा दिया गया है न! सब भेद मालूम हो गये है न!!

(नेपथ्य मे कोलाहल—'चलो' 'हटो'। दूसरी ओर से पुरंदर कापालिक का प्रवेश। उसके पीछे पीछे कुछ और कापालिक केश रखाये हुये और जूट बाधे हुये। गले मे मुण्डमाल, जो सुमन मालाओं से लगभग ढकी हुई है। कानों मे कुन्डल, भुजों पर रत्न-जटित वलय, शरीर पर भस्म और उपवीत। सब की कमर में कुटार और हाथ में डण्डे। किसी किसी के हाथ में प्याली। 'जय महाकाल, कहते हुये कदली मण्डप के नीचे के आसनों पर जा बैठते है। बीच की एक ऊँची आसन पर पुरन्दर। सब पुष्ट शरीर। कपड़े भगवे। कोई कोई व्याघ्र चर्म लपेटे हैं।)

पहली स्त्री—कैसे भयानक दिखते हैं ये सब!

दूसरी स्त्री—सीखना है इनसे जीवित-समाधि लेने की क्रिया ?

पहली स्त्री—हाथ जोड़े मैंने ! मै तो ऐसी ही भली। जीवित-समाधि के बिना ही किसी दिन चैन के साथ मर जाने की साध रखती हूँ।

दूसरी स्त्री—ओ हो, अब यह शास्त्र !

एक कापालिक—अब हमारे गुरू महाराज आचार्य पुरन्दर जी जीवित समाधि लेते हैं। देखो कैसी विलक्षण बात है।

(एक गड्ढा खोदा जाता है)

(दूसरी ओर से कालकाचार्य सुनन्दा और वकुल का प्रवेश)

पहली स्त्री—अब ये आये जो सब बातें उल्टी उल्टी कहेंगे।

वकुल—(सुनकर) नहीं देवी, हम सत्यधर्मी हैं। तुमको सच्चा ज्ञान देने आये हैं। सामने जो कुछ हो रहा है और होने वाला है, सब आडम्बर है, सब पाखण्ड है। यह सब यातनाओं का खुला हुआ द्वार है। यह विष की खेती है। अमृत की खेती करो। श्रद्धा के बीज बोओ। उन पर तप की वर्षा होगी। प्रज्ञा के हल, दर्पों से लाज करने की हरिस, मन की जोत और स्मृति की फार से अपने जीवन खेत को जोतो। सत्य तुम्हारा खुरपा हो, उत्साह बैल हो। यही सच्चा योग क्षेम है। इसी से अमृत फल मिलेगा। सामने जो हो रहा है वह विष की खेती है। यह जो कुक्कुट लड़ा रहा है इसको विदित होना चाहिये कि किसी भी पल काल इसको अपना ग्रास बना लेगा।

कालकाचार्य—भद्रे—

दूसरी स्त्री—तुम्हारा होय भद्र। हम सधवा है, यह महाकाल जी की उज्जैन नगरी है, और हम मालव हैं, इतना स्मरण रखना।

(गड्ढा तैयार हो गया है। पुरन्दर उसमें समाधि लेने वाला है)

एक कापालिक—आचार्य पुरन्दर पूरे एक महीने की समाधि लेने की शक्ति रखते हैं, परन्तु वे कुछ घड़ियों की ही समाधि लेंगे। जैसी कुछेक घड़िया वैसे ही महीने। सावधान होकर देखो।

कालकाचार्य—हे मालव नर-नारियो, मेरी बात सुनो। गङ्गा, यमुना, नर्मदा, क्षिप्रा चाहे किसी भी नदी में कलुषित कर्म करने वाला मूढ़ कितना भी स्नान करे, पर शुद्ध नहीं होगा। यह क्रिया योग का असत् और मिथ्या उपयोग है। योग की सब क्रियायें केवल मनोनिग्रह और चेतन समाधि के लिये हैं। उनको शुद्ध करने के उपकरणों से मन को निर्मल करने वाले उपकरण भिन्न होते हैं। तन साधन मात्र है, मन संचालन का केन्द्र। इस केन्द्र को शुभ और शुभ्र बनाओ।

(इसी समय एक छोटे कदली-वितान के नीचे एक ब्राह्मण समिधा जलाकर हवन करता है। कालकाचार्य का उस ओर ध्यान जाता है।) हे ब्राह्मण, इन लकड़ियों को जलाकर तू क्यों शुद्धि मानता है? यह शुद्धि नहीं है। यह तो एक बाहरी उपादान है। पंडित लोग इसको शुद्धि नहीं कहते। अपने भीतर की ज्योति जगा यही सब कुछ है।

ब्राह्मण—चुप। पांडित्य मत बघार। हम तुझको गुर्गों तक पढ़ा सकते हैं।

एक कापालिक—तुम दाल-भात में मूसलचन्द कहां से आ गये जी? देखना हो तो चुप-चाप खड़े रहो, नहीं तो नौ दो ग्यारह हो जाओ।

(पुरन्दर गड्ढे से खड़ा हो जाता है।)

कालकाचार्य—अरे मूर्ख, इस जटा जूट के रखा लेने से तेरा क्या बनेगा? और क्या यह व्याघ्र चर्म तुझको मुक्ति देगा? व्याघ्र किसी समय वन में स्वच्छन्द विहार करता होगा और वन की शोभा रहा होगा। तूने या तेरे किसी विचारहीन भक्त ने उस निस्सहाय व्याघ्र को मार डाला और अब तू उसके चर्म से अपने इस नाशवान शरीर को सजाये फिरता है!

कापालिक—देखो, बहुत बक-बक मत करो। हमारे धर्म में विक्षेप मत करो।

कालकाचार्य—तू अपने किये पापों से अपने को मलिन बना रहा है पाप छोड़ दे, शुद्ध हो जायगा। यह धर्म नहीं है।

पहली स्त्री—बाबा, तुमको यही अवसर हमारे आनन्द को नष्ट करने के लिये मिला ? हाथ जोड़ती हूँ। देख लेने दो। हम थोड़ी देर में अपने अपने घर चली जायेंगी। तब मन चाहे उपदेश दे लेना। हैं—देखो तो! चुप ही नहीं रहते।

कालकाचार्य—जिस समय चित्त किसी कारण वश जड़ हो जाता है उस समय हित अहित कुछ समझ में नही आता। बर्तन के पानी में काला रंग डाल देने के बाद जैसे उसमें हमे अपना प्रतिबिम्ब ठीक ठीक नहीं दिखलाई देता, उसी प्रकार जिसका चित्त विकारमय और व्यग्र होगया है, उसे अपने हित अहित का बोध नहीं रहता।

दूसरी स्त्री—चलो बाई, घर चलें। इन बाबा भिक्षुओं के मारे मेलो ठेलो में कुछ भी आनन्द नहीं मिलता।

(स्त्री—पुरुष जाने को उद्यत।)

कापालिक—ठहरो, मालव नर–नारियो, ठहरो। हमारी भुजाओं मे पर्याप्त बल है। ये शकों और तुखारों के भाई बन्द हैं। उपदेशों की आड़ मे हमको पुरुषार्थ रहित करना चाहते हैं। हम अभी निकाल बाहर करते हैं।

कालकाचार्य—अरे! यह तेरा गर्वीला रूप एक दिन जीर्ण शीर्ण हो जायगा। इस देह को एक दिन गल गलकर भग्न हो जाना है। इस घृणित देह पर इतना गर्व और दूसरों की अवहेलना करना, तेरी महान मूर्खता का प्रमाण है।

कापालिक—*(पास आकर)* तुम कोई घुटी खोपड़ी बौद्ध या जैन हो ? कौन हो ?

कालकाचार्य—*(दृढ़ता पूर्वक)* दोनों हूँ अथवा कोई, अथवा कुछ नहीं। भगवान का बहुत छोटा सेवक।

कापालिक—क्यों व्यर्थ ही रार ठान रहे हो ? हम लोग साधारण शैव नहीं हैं। हम भैरव–कापालिक हैं जिनको बलिदान के लिये तुम्हारे सरीखे नर–मुण्डो की कभी कभी आवश्यकता पड़ जाती है। यह एक

सुन्दर छोकरा माता के लिये अच्छा मुण्ड दे सकता है। और यह क्या ? अरे ! एक सुन्दर छोकरी भी लिये हुये डोल रहे हो ! इसको चौपट करने के लिये क्यो उतारू हुये हो ? भागो नहीं तो अब डडे का उपदेश मै देता हूं।

(नेपथ्य मे 'मालवगण की जय,' का शब्द होता है और फिर 'हटो, बचो का)

(उज्जैन के अधिप गर्दभिल्ल का प्रवेश। तीस बष की आयु का सुन्दर पुरुष। वेशभूषा उज्जैन के समवयस्क पुरुषो जैसी। सिर पर छोटासा मुकुट, केवल यही विशेषता। पीछे पीछे कुछ सुसज्जित योधा जूते, पजामे, कुर्ते, अंगरखे और उष्णीष बाधे हुये। उज्जैन के कुछ प्रमुख दाएं बाएं। कोई साज-सिगार या धूमधाम नही। इस युग मे दो सहस्र वर्ष आगे का राज-रूप अभी विकसित नही हुआ है)

गर्दभिल्ल—*(उपस्थित जनता को पहले प्रणाम करके)* नमस्कार मालव नर-नारियो।

(सब जन सम-अभिवादन करते है)

गर्दभिल्ल—कापालिक जी, क्या बात है ? क्या ये जैन साधु अथवा बौद्ध भिक्षु हैं ? क्या कोई विवाद चल रहा है ?

कापालिक—राजन्य ! हमारे आचार्य पुरन्दर जी जीवित समाधि का प्रदर्शन कर रहे हैं। वे गर्त मे उतर भी चुके हैं। परन्तु यह व्यर्थ ही गाली दे रहा है। हम लोगों को किसी की भी गाली सुनने का अभ्यास नहीं है।

सुनन्दा—हमको गाली सुनने का अभ्यास है, कापालिक ! परन्तु हम गाली खाकर और कठोर वचन पीकर भूले भटके जनपदों को ज्ञान का मधु बाटते रहते हैं। हमको तुम क्षुब्ध नहीं कर सकते।

गर्दभिल्ल—जान गया आप लोग बौद्ध श्रमण हैं।

सुनन्दा--नहीं है।

गर्दभिल्ल—कहा मे आना हुआ ?

वकुल—हमलोग धारा से आये हैं।

गर्दभिल्ल—धारा से ! अस्तु। आप हम मालवगण के अतिथि हैं। कापालिक जी, जाओ अपना काम देखो।

वकुल—ये आचार्य कालक हैं—धारा के राजकुमार, और, ये श्राविका सुनन्दा राजकुमारी हैं।

कालकाचार्य—हमारा यह परिचय निरर्थक है।

सुनन्दा—भ्रांति मे डालने वाला।

(गर्दभिल्ल आदर पूर्वक प्रणाम करता है)

गर्दभिल्ल—आप हमारे सम्भ्रान्त, पाहुने हैं। मालवगण का मधुपर्क हमारे भवन मे ग्रहण कीजिये न।

कालकाचार्य—जी नहीं। हम लोग सत्कार के भूखे नहीं हैं। हमलोग ज्ञान प्रचार के भूखे हैं। सम्मान का मोह अज्ञानियो का लक्षण है।

कापालिक—मालवगण में अनेक श्रावक और भिक्षु आते हैं। अपनी बात कहते है और चले जाते हैं, परन्तु ऐसे दम्भी न तो यहा प्रवेश पाते हैं न स्थान।

(अन्य कापालिक आ जाते है)

गर्दभिल्ल—इस प्रकार का व्यवहार मालवगण की शिष्टता को शोभा नहीं देता। ये हमारे अतिथि है। इनका अपमान नहीं किया जाना चाहिये।

वकुल—हमने जितनी अभद्रता उज्जैन मे पाई उतनी और कहीं नहीं। ये बखरी के परनाले हैं। बहते हों तो बहें हम उपेक्षा करते हैं।

(कापालिक दांत पीसते है)

एक कापालिक—हमको आज नर-बलि भी चढ़ानी है *(वकुल की ओर घूरता है)*

(कोलाहल होता है)

गर्दभिल्ल—शान्त, कापालिक तपस्वियो, शान्त नर नारियों।

(लोग शान्त हो जाते है)

कालकाचार्य—हमको विदित है इन कापालिकों और अन्य शैवियों ने जैनियों को भी त्रास दे रखा है। वे भयभीत होकर पिछड़ गये हैं, परन्तु हम उत्तम भद्र हैं। हमारा दमन नहीं किया जा सकता। हम इनको बोध, ज्ञान और प्रकाश देने आये है।

ब्राह्मण—(हवन कुण्ड से उठकर) अरे, हम तुम सबको जानते हैं समान-व्यापी पाखण्डी और धूर्त !

कालकाचार्य—रोगी को न तो वैद्य अच्छा लगता है और न औषधि भाती है। ब्राह्मण, तुम तो रोगियों मे महान जो हो। हम और हमारा उपदेश तुमको क्यों हितकर लगने लगा।

(कोलाहल होता है)

गर्दभिल्ल—ब्राह्मण सावधान। साधुओ यहा से जाओ। मालवो के राजन्य की आज्ञा है।

(इसी समय पुरन्दर सिंगा बजाता है, सब कापालिक उसके पास दौड़कर चले जाते हैं। कालकाचार्य सुनन्दा और वकुल का निश्चित वृत्ति के साथ प्रस्थान। गर्दभिल्ल सुनन्दा को स्नेह और आदर की दृष्टि से देखता है। सुनन्दा उसकी ओर देखकर गर्व के साथ दूसरी दिशा मे देखती हुई चली जाती है)

(दूसरी ओर से इन्द्रसेन का प्रवेश। इन्द्रसेन यौवन में है। शरीर लम्बा और दृढ़। केश पीछे को लौटे हुये। कमर तक की अंगरखी और धोती पहिने है। जूते वैसे ही। आभूषण उसी प्रकार के पहिने हैं जैसे मालव जनपद के अन्य पुरुषों के हैं। कमर में तलवार, पीठ पर छोटी ढाल। उसकी गम्भीर आकृति शान्त स्थिति से भीग सी रही है। नेत्र सतेज, परंतु स्थिर हैं। भ्रूमध्य से कुछ ऊपर केसर का बिन्दु लगाये है। छाती के नीचे तक मोतियों से

जुडा हुआ स्वर्णहार पहिने है, जिसके बीचों बीच एक बडा मणि है। गर्दभिल्ल और इन्द्रसेन परस्पर अभिवादन करते है—बहुत थोडा मस्तक झुका कर। सब नागरिक अभिवादन करते है)

गर्दभिल्ल—स्वागत मालव-गौरव।

इन्द्रसेन—धन्यवाद राजन्य। अभी कुछ कोलाहल हो रहा था। क्या था उसका कारण?

गर्दभिल्ल—(*पुरन्दर के मण्डप के पास जाकर*) धारा के जैन सन्यासियों और कापालिकों मे कुछ वितण्डावाद हो गया था। सन्यासियों में वहा के राजकुमार और राजकुमारी भी थे। चले गये। अब हो न आचार्य पुरन्दर का योग प्रदर्शन?

इन्द्रसेन—हो राजन्य। उत्तमभद्रों के राजकुमार और राजकुमारी! हू। आरम्भ हो। मै आचार्य के दर्शन करने आया था।

(नमस्कार करता है। पुरन्दर वरद हस्त करता है। पुरन्दर पद्मासन लगाकर प्राणायाम करने के उपरान्त समाधि लेता है। गड्ढा पूर दिया जाता है और पाट भी दिया जाता है। नर नारी नाचते हुये 'जय महाकाल, जय महाकाल,' कहते है)

इन्द्रसेन—राजन्य, आज उत्सव की समाप्ति का दिन है। मैं कल नलपुर चला जाऊँगा।

गर्दभिल्ल—नहीं आर्य। अभी और कई प्रकार के उत्सव होने को हैं। आपके यहा पधारने से उज्जैन-निवासी आनन्द मे झूम उठे हैं। कुछ दिन तो और ठहरिये।

इन्द्रसेन—मथुरा से आगे बढ़कर पद्मावती में शकों ने पैर रोप लिये हैं। उत्तमभद्रों ने उनका साथ दिया है, और दे रहे हैं। उधर सिन्धुसौवीर, सुराष्ट्र, लाट और परान्त मे भी बौद्ध धर्म की आड़ में उनको ठौर मिलते जा रहे हैं। यौधेय, मालव आरक इत्यादि सब गणों के सामने सकट सिमटता सा आ रहा है। प्रति रोध का सगठन करना है। मुझको अब विदा लेनी होगी।

गर्दभिल्ल—तो क्या जनता के खेलकूद, उत्सव स्थगित करने पड़ेंगे ?

इन्द्रसेन—नहीं तुरन्त तो नहीं, परन्तु इनको संक्षिप्त कर देना होगा।

गर्दभिल्ल—देखूंगा—अब आप कहाँ जायँगे ?

इन्द्रसेन—पहले विदिशा। वहाँ के रामचन्द्र नाग को सजग करना है। विन्ध्यखण्ड के तितर-बितर जनपदों को एक माला में गूँथना है। उत्तम-भद्रों की स्वार्थ-मुग्धता का दमन भी एक समस्या है। दूसरी कठिन समस्या आन्ध्रनायक शातकर्णि को इस समय अश्वमेध यज्ञ करने से रोकना है। प्रयत्न करूँगा। आप मालवों को सचेत रखिये।

गर्दभिल्ल—हम लोग शातकर्णि से नहीं दबेंगे। उत्तम-भद्रों को ठीक करने के लिये हमारे मित्र यौधेय ही बहुत है।

इन्द्रसेन—उत्तम-भद्रों और यौधेयों की गुत्थी को सुलझाने के लिये थोड़ा सा समय चाहिये। शातकर्णि वीर, बुद्धिमान, और प्रबल हैं, परन्तु उसको छत्र, चँवर और सिंहासन की लालसा लग गई है। इस लालसा पर सहानुभूति के साथ विचार तभी संभव है, जब हम शक-पुलिन्दों को अपने देश से निकाल बाहर कर दे।

गर्दभिल्ल—फिर भी आर्य, हम अपना अस्तित्व शातकर्णि के हाथ मे नहीं सौंप देंगे।

इन्द्रसेन—गणतन्त्र नहीं नष्ट हो सकेंगे, भरोसा रखिये। इस समय अनेक संस्थायें उठ खड़ी हुई हैं। उनके समाधान में विलम्ब नहीं होगा। शीघ्र मिलूँगा। नमस्कार। उज्जैन निवासियो, नमस्कार। (*जाते हुये लौटकर*) राजन्य खेलकूद की अतिशयता मे मालवजन की शक्ति और उमङ्ग को अब और अधिक मत बिखरने दीजिये। ये दिन कुक्कुट लड़ाने के नहीं हैं।

गर्दभिल्ल—जनता मनोरञ्जन चाहती है। उससे शक्ति का वर्धन होता है, परन्तु आगे अधिक संयम के साथ काम लिया जायगा।

इन्द्रसेन—हूँ—ऊँ—आप प्रयत्नों में सफल हों, मेरी यही कामना है।

(*जाता है। इन्द्रसेन को सब आदर पूर्वक विदा करते हैं*)

तीसरा दृश्य

[स्थान—उज्जैन नगर के बाहर, क्षिप्रा नदी का तट। समय रात्रि। अंधकार। नेपथ्य मे हवन कुण्ड में आग जल उठती है। परदे पर, भीतर चलने वाले कापालिको की छाया पड़ रही है। कुछ कापालिक एक युवक को बँधा हुआ लाते हैं। उसके मुँह में कपड़ा ठूँसा गया है। वे उसको नीचे डाल देते है। दूसरी ओर से कालकाचार्य और सुनन्दा का प्रवेश)

सुनन्दा—(*धीरे से*) वह देखिये आचार्य ! वह क्या है ? यह आग अपने पेट में किसी बीभत्स को छिपाये है। वकुल कहा होगा ?

कालकाचार्य—मेरे पीछे पीछे आओ सुनन्दा।

(दोनो दबे पांव नेपथ्य की ओर हवन कुन्ड की दिशा मे बढ़ते है। आग के धूमरे प्रकाश में वकुल इन दोनो को पहिचान लेता है। हिलता है, बन्धनों को तोडने का उपाय करता है, परन्तु व्यर्थ कुछ कहना चाहता है, किन्तु कंठ रुद्ध है। कालकाचार्य और सुनन्दा को अकस्मात अपने इतने निकट देखकर कापालिक हक्के-बक्के से खड़े हो जाते है। कालकाचार्य और सुनन्दा बकुल को पहिचान लेते हैं)

सुनन्दा—(*तीक्ष्ण स्वर मे*) आर्य भूमि और मालवगण को कलंकित करने वाले कापालिको ! इस पिशाच कार्य को छोड़ो। किसी भी शास्त्र मे इसके लिये समर्थन नहीं है। मुक्त करो इसको। जैन सन्यासी है।

कालकाचार्य—तुम लोगों को कीड़ों मकोड़ों की योनियों में जन्म लेकर दारुण यातनायें सहनी पड़ेगी। इस कुकर्म से विरत हो और ज्ञान के दीप से आगे का पन्थ परखो।

(घबराये हुये कापालिक स्थिर हो जाते हैं)

एक कापालिक—हमको तुमसे किसी भाव भी बुद्धि मोल लेने की अटक नहीं है। हटो यहाँ से। यह हाट या चौक नहीं हैं जहाँ हम अपने

हाथ की खुजली तुम्हारे घुटे खोपड़े पर न मिटा सके। भागो नही तो तुम्हारा भी बलिदान किया जायगा।

सुनन्दा—*(विनीत स्वर मे)* कापालिक, यह जो एक निस्सहाय और विवश प्राणी नीचे बँधा पड़ा है यह तुम्हारे सदृश ही देहधारी मनुष्य है। यदि तुम किसी भी शास्त्र में मनुष्य के बलिदान का समर्थन बतलादो तो इसके स्थान पर मै आने को तैयार हूँ। मुझको बाधने की आवश्यकता नही पड़ेगी। मेरी देह को चाहे खड खंड करके होम देना, अथवा समूचा ही। तुम्हारा देवता यदि नर-बलि चाहता है तो उसको मेरे मास से सतुष्ट हो जाना चाहिये।

(कालकाचार्य का हाथ सहसा अपनी कमर पर जाता है, मानो खड्ग निकालना चाहता हो, परन्तु उसके पास कोई हथियार नही है)

कालकाचार्य—*(दांत पीस कर)* ओह! *(फिर संयत होकर एक क्षण उपरान्त)* कापालिको, तुम्हारी समझ में यदि यह ऊँचा सिद्धान्त न समा पा रहा हो तो मै तुम्हारे आचार्य पुरन्दर से बात करूँगा। कहा हैं वे? मै उनको शास्त्रार्थ मे परास्त करके रहूंगा।

एक कापालिक—हुँ, आचार्य पुरन्दर से बात करेगा! आचार्य यहा इससे शास्त्रार्थ करने आयेंगे!! यह उनको हरायेगा!!! वे नगर में हैं। जा वहा भी कुछ कापालिक तेरा सिर फोड़ने को मिल जायेंगे।

कालकाचार्य—मूर्खो, राक्षसो, हमारे जीते जी तुम्हारा यह कुकृत्य सफल न हो सकेगा।

(कापालिक वध की इच्छा से कालकाचार्य को घेरते हैं। तब तक सुनन्द वकुल के मुंह से कपड़े की ठूँस निकाल फेकती है। वकुल चिल्लाता है—'दौड़ियो, बचाइयो।' कुछ कापालिक सुनन्दा पर झपटते है)

सुनन्दा—मैं सुखी हूँ कापालिको, मुझको मार डालो। वकुल तुम मुक्त हो!

(परन्तु कालकाचार्य या सुनन्दा पर शस्त्र उठाने का उनको साहस नही होता। वे एक स्थान पर एकत्र होकर संकेतों में कुछ परामर्श करते है। वकुल निरन्तर चिल्लाता है)

कालकाचार्य—मारो इमको कापालिको। हाथ क्यों रूक गया।

एक कापालिक—बलिदान के लिये लाया गया पशु या नर यदि ऐसे समय पर बोल उठे तो वह एक घड़ी के लिये अवध्य होजाता है। इसलिये हम इसको यथेष्ट चिल्लाने दे रहे हैं।

कालकाचार्य—तुम्हारी अपेक्षा तो बन मे भ्रमण करने वाली जातिया अच्छी, क्योंकि वे ऐसे पशु या नर को जो वध के समय बोल उठे फिर मारते ही नहीं।

(वकुल बधन तोड़ने की चेष्टा करता है, परन्तु इतना जकड़ा हुआ है कि तोड़ नहीं सकता। वह निरन्तर चिल्लाता रहता है। कालकाचार्य और सुनन्दा उसके बचाने के लिये आतुर है, परन्तु अपने को असमर्थ पाते है।

एक कापालिक—उपदेश की आड़ में तुम जंगली जातियों की निन्दा मत करो। वे सब भैरव की पूजा करती हैं और हमारी पट्टी में हैं। पकड़ो कापालिको इस मुँह चले को और इस छोकरी को। इनका भी बलिदान किया जायगा।

सुनन्दा—(*पीछे हटकर*) मुझको मत छूना। तुम अपना मन्त्र पढ़ो, मै आग में कूदने को प्रस्तुत हूं। परन्तु इन दोनों को जाने दो। तुम्हारे और जगली जातियों के भैरव क्या मुझ अकेली के रक्त मांस से संतुष्ट न हो जायेंगे?

(कापालिक उन दोनों को पकड़ कर बांध लेते हैं। उसी समय वकुल की पुकार सुनकर कुछ सैनिक और भाट द्रांगिक सहित आजाते है)

द्रांगिक—यह सब क्या है? कौन चिल्ला रहा है? किसको पकड़ लिया गया है।

वकुल—मुझको मार डालने के लिये दुष्ट कापालिक पकड़ लाये ! ये दोनों साधु मुझको बचाने के लिये आ गये तो इनको भी बाधने का प्रयास कर रहे है !! मुझको तो इतना कस दिया है कि मेरा अङ्ग अङ्ग फूटा जा रहा है !!! ओह !!!!

(शब्द की तुमुलता पर इधर उधर से अनेक कापालिक एकत्र हो जाते है)

एक कापालिक—हम को विधि पूर्वक अपना कार्य करने की स्वतन्त्रता है। कोई नहीं रोक सकता।

द्रांगिक—उज्जैन नगरी के इतने निकट ! महाकाल के मन्दिर के पड़ौस में !! मुक्त करो इनको।

अनेक कापालिक एक साथ—असम्भव।

द्रांगिक—आप लोगों को विदित होना चाहिये कि नगरों और ग्रामों मे तथा उनके पड़ौस में बलिदान बन्द कर दिये गये हैं।

कापालिक—आप क्या जैन या बौद्ध हो, द्रांगिक ? हम लोग दिन में तो बलिदान नहीं करते। यह रात है, क्या तुमको दिखलाई नही पड़ रहा है ?

द्रांगिक—रात में भी नहीं कर सकोगे ! यह उज्जैन है !! मनुष्यों का बलिदान !!! कभी नहीं। छोड़ दो इन लोगों को।

वकुल—अरे मेरे रस्से को तो खोल दो। खाल कट गई। रक्त बह रहा है।

द्रांगिक—(*वकुल को पास से देखकर और उस के सौन्दर्य से और भी अधिक पसीज कर*) तुम लोग कितने निठुर हो। भगवान शंकर ने सुन्दर प्रतिमायें क्या नष्ट करने के लिये बनाई हैं ?

एक कापालिक—शैव होकर तुम ऐसा कहते हो ! डूब मरो क्षिप्रा की धार में !!

द्रांगिक—शैव हूँ, परन्तु कापालिक नहीं हूँ। सचेत सैनिको, काटो बंधन—मुक्त करो इन तीनों को।

सब कापालिक—असम्भव । ये हमारे बन्दी हैं ।

(कुछ और कापालिक आ जाते हैं)

द्रांगिक—तुम सब लोग राजा के पास चलो ।

एक कापालिक—हम अपने आचार्य के अतिरिक्त और किसी को राजा नहीं मानते । जिस किसी को आना हो यहीं आवे ।

द्रांगिक—दो सैनिक इसी क्षण राजा के पास जाओ । कहना, द्रांगिक मेले में आये हुये लोगों की रखवाली के सम्बन्ध में घूमता हुआ क्षिप्रा के तट पर पहुँचा तो वह कोलाहल सुनकर तुम लोगों के साथ दौड़ आया और इन तीन भिक्षुओं को इन क्रुद्ध कापालिकों से घिरा हुआ पाया, जो बलिदान के नाम पर इनका बध कर डालना चाहते हैं । शीघ्र जाओ ।

सैनिक—जिस समय हम लोगों ने कोलाहल सुना एक चाट द्वारा राजा को सूचना उसी समय भेज दी थी । आपको स्मरण होगा ।

द्रांगिक—तो भी जाओ । विलम्ब मत करो ।

(दो सैनिकों का प्रस्थान । कापालिक उन तीनों को ले जाने के लिये खींचा तानी करते हैं । दूसरी ओर से गर्दभिल्ल का कुछ सैनिकों के साथ प्रवेश । साथ में जलती हुई मशालें)

गर्दभिल्ल—क्या बात है द्रांगिक ? ये इतने कापालिक यहां क्यों इकट्ठे हैं ? अरे, और ये सन्यासी ! धारा के अतिथि !!

सब कापालिक—धारा के ! उत्तम भद्र !! हमारे चिर शत्रु !!! तब तो ये बलिदान के लिये और भी अधिक उपयुक्त हैं ।

गर्दभिल्ल—ये सम्भवित जैन हैं । इनको जाने दो ।

(पुरन्दर का प्रवेश । पुरन्दर स्वस्थ छरेरे शरीर का मनुष्य)

सब कापालिक—आचार्य की जय हो ।

(गर्दभिल्ल नमस्कार करता है)

पुरन्दर—क्या है राजन्य ? मैंने अभी अभी समाधि खोली और कोलाहल सुन कर चला आया ।

एक कापालिक—ये तीनों हमारे बन्दी हैं। द्रागिक व्यर्थ ही हमारी भर्त्सना कर रहा है।

गर्दभिल्ल—ये तीनों बौद्ध या जैन सन्यासी हैं। उज्जैन में अवध्य हैं। इनकी स्वतन्त्रता भी अवाध्य है।

एक कापालिक—परन्तु ये उत्तम भद्र हैं और हमारे वन्दी हैं।

गर्दभिल्ल—यहा विधान मालव गण का है न कि कापालिकों का!

पुरन्दर—परन्तु उत्तम भद्र हम सबके परम शत्रु हैं। इसलिये जिस किसी के हाथ पड़ जायं उसी के वन्दी हैं। राजन्य, आपने देखा नहीं उन्होंने हमारे योग कार्य मे कितनी वाधा डाली थी?

कालकाचार्य—सन्ध्या समय हमने जो कुछ किया था वह धर्म कार्य था। इस समय हम कापालिकों को अधर्म करने से रोकने को आ पहुँचे। हम जो कुछ कर रहे है वह धर्म है। तुम लोग जो कुछ कर रहे हो वह अधर्म और अनीति है, दुराचार है। सबके सब नरक जाओगे रौरव नरक की यातनायें सहोगे।

पुरन्दर—हमारे युद्ध देवता कार्तिकेय का रण वाहन मयूर तुम सरीखे तुच्छ कृमि कीट और सर्पों को यों ही चुग जाता है। तुम लाग हमारे वन्दी हो। बक बक की तो जीवित काट कर फेक दूँगा।

द्रांगिक—आचार्य, आप के कापालिक इन तीनों कों बलिदान के लिये पकड़े हुये हैं। इनका बलिदान नहीं हो सकता।

गर्दभिल्ल—बलिदान नहीं हो सकता। और न इनको किसी भी प्रकार का त्रास ही दिया जा सकता है। यह सब हमारे गण के नियमों के प्रतिकूल है।

पुरन्दर—(*सोचकर*) कुछ भी हो ये वन्दी रहेंगे। इनका बध भी न हो, परन्तु वन्दी अवश्य आजन्म रहेंगे। इन्होंने हमारे यज्ञकार्य को विध्वंस करने में कोई कसर नहीं लगाई। ये हमारे वन्दी निःसन्देह रहेंगे।

सब कापालिक—ऐसा ही होगा। ऐसा ही होगा। हम इनको ले जायंगे।

गर्दभिल्ल—अच्छा ये वन्दी रहेंगे, परन्तु उज्जैन के मालवगण के।

सुनन्दा—हमारा अपराध?

बकुल—हमारा अपराध?

कालकाचार्य—हमने किया क्या है?

बकुल—हमतो मेले मे भिक्षाटन करते हुये पहुँचे थे, हमने तो कोई भी अपराध नहीं किया।

पुरन्दर—निकले थे भिक्षाटन को और डालने लगे यज्ञों में विघ्न!

गर्दभिल्ल—क्या किया है, इसका न्याय पीछे होगा। इस समय इस विषय पर तर्क भी नहीं किया जायगा।

पुरन्दर—(ढलकर) हम लोग इस पर सहमत हैं कि ये तीनों आपके वन्दी रहें, परन्तु स्पष्ट वचन दीजिये कि आप इनको मुक्त नहीं कर देंगे।

सब कापालिक—वचन दीजिये। शपथ लीजिये।

गर्दभिल्ल—मै वचन देता हूँ।

पुरन्दर—अच्छा तो ये तीनों अब आपके वन्दी हुये। कापालिको, चलो अपने आश्रम को।

(नेपथ्य की आग बुझ जाती है)

एक कापालिक—परन्तु ये भागने न पावें।

गर्दभिल्ल—विश्वास रखिये।

पुरन्दर—और इनका न्याय इस अपराध के सम्बन्ध में होगा, कि ये उत्तम भद्र हैं जो श्रावक रूप मे हमारा मख विनाश करने के लिये उज्जैन आये हैं, कपटी और धूर्त हैं।

कालकाचार्य—हम तुम सबको प्रबोध देने के लिये आये हैं। यदि यही हमारा अपराध है तो हम तीनों स्वीकार करते हैं! न्याय के छद्म की कोई आवश्यकता नहीं। करो हमारा बध, अधर्मियो! पिशाचो!!

पुरन्दर—(*दांत पीसकर*) राजन्य, इन लोगों को अपना अपराध स्वीकार है। अनुसन्धान की आवश्यकता नहीं है। अब इनको दण्ड दो। कम से कम जीभ तो इनकी काट ही डाली जानी चाहिये।

गर्दभिल्ल—मैं अकेला दण्ड नहीं दे सकता। उज्जैन के प्रमुख जन समिति मे बैठेगे। वे ही निर्धार करेंगे। ये अब हमारे वन्दी हैं। दण्ड के निश्चय होने तक ये लोग अब मेरे अधिकार में रहेगे।

पुरन्दर—मालवगण में हमारा भी कुछ स्थान है।

गर्दभिल्ल—तब समिति मे बैठकर निर्णय करिये। आप स्वय आरोपी न्यायाधीश और दाण्डिक—सब एक साथ,—नहीं बन सकते। आपको शोभा नहीं देगा!

पुरन्दर—उज्जैन निवासी यदि हम लोगो के त्रिशूल और कुठार द्वारा अपने शत्रुओं से रक्षा चाहते हैं तो उनको हमारा निर्णय मानना चाहिये!

गर्दभिल्ल—(*क्षुब्ध स्वर में*) क्या है आपका निर्णय आचार्य? न्याय की सापेक्षता का नही, न्याय की उपेक्षा का निर्णय?

(*सुनन्दा आशान्वित होती है। वकुल उत्कण्ठित और कालकाचार्य उद्विग्न हैं*)

पुरन्दर—(*एक क्षण सोचकर*) यही कि हम इनके लिये बध का दण्ड तो कुछ कठोर समझते हैं, परन्तु आजन्म कारावास उपयुक्त रहेगा।

गर्दभिल्ल—(*ढले हुये स्वर मे*) उज्जैन निवासी जैसा उचित समझें।

पुरन्दर—और आप स्वय?

गर्दभिल्ल—(*सोचकर, फिर सुनन्दा की ओर देखते हुये*) मैं उचित और अनुचित की स्पर्द्धा मे व्यस्त हूँ।

कालकाचार्य—मै वन्दी होना स्वीकार नहीं करना।

कापालिक—हुं!

गर्दभिल्ल—ले चलो द्रागिक इन लोगों को। ये तीनों मेरे भवन में पृथक पृथक वन्दी होंगे।

पुरन्दर—आपके भवन में! साधारण कारावास में क्यों नहीं?

गर्दभिल्ल—क्योंकि ये राजकुल के लोग हैं। क्योंकि यह जैन सन्यासी हैं।

पुरन्दर—हा! राजकुल!! राजकुल!!! अस्तु। कहीं भी बन्द करो, परन्तु इस रोग को बाहर मत निकलने देना। और, न फैलने ही देना। नहीं तो—नहीं तो—हम अपने मयूर को प्रमत्त कर सकते हैं, यह स्मरण रहे। आओ कापालिको मेरे साथ।

(कापालिक पुरन्दर के साथ जाते है)

एक कापालिक—*(उन तीनों की ओर देखता हुआ)* हमारा मयूर आज मत्त होते होते रह गया।

गर्दभिल्ल—*(कापालिकों के चले जाने पर)* उस मुनि के बन्धन खोलो द्रागिक।

(द्रांगिक वकुल की रस्सी खोल देता है)

गर्दभिल्ल—द्रागिक, अब इन तीनों को मेरे भवन में सम्मानपूर्वक वन्दी करदो। भोजन और शयनादि का भी उचित प्रबन्ध कर देना। तीनों पृथक पृथक रखे जायँगे।

सुनन्दा—वन्दीगृह!

कालकाचार्य—स्वच्छ पवन को आरुद्ध।

सुनन्दा—दूसरों की रक्षा के निमित्त जलते हुये कुण्ड में फेका जाना, भूखे गीधों को अपनी देह के मासपिण्ड दे देना, चींटियों की प्यास को अपने रक्त से बुझाना वन्दीगृह में अलग अलग रहने से अधिक अच्छा है।

गर्दभिल्ल—अलग अलग ही रहना होगा, परन्तु आप लोगों को किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं हो पायगा। यह व्यथा थोड़े ही समय की है देवी। मैं विवश हूँ।

(वह सुनन्दा को आधे क्षण अर्थ भरी दृष्टि से देखता है। सुनन्दा दूसरी ओर मुँह फेर लेती है)

वकुल—हमारा न्याय कब तक होगा राजन्य?

कालकाचार्य—न्याय! बधिकों से न्याय की आशा!!

गर्दभिल्ल—शीघ्र होगा। मैं सहायता करूँगा।

(वे सब जाते हैं। सुनन्दा मुँह फेरते ही देखती है कि गर्दभिल्ल उसकी ओर दृष्टि किये हुये चल रहा है)

सुनन्दा—*(गर्दभिल्ल के चेहरे का निरीक्षण सा करने के उपरान्त ऊपर की ओर आंख उठाकर)* हे भगवान।

(सब का प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[स्थान—उज्जैन। गर्दभिल्ल का भवन। एक कक्ष मे सुनन्दा है, दूसरे में कालकाचार्य और तीसरे मे वकुल। उनके कक्ष बड़े है और उनमे गोखें है। विश्राम के लिये चौकियाँ, मञ्च और पर्यङ्क है बिछाई रंग विरंगे पत्थरो से जड़ी हुई और स्वच्छ। दीवारों पर महादेव, पार्वती, एक मुखी और पञ्चमुखी शिव तथा अर्द्ध नारीश्वर के चित्र हैं। कुछ चित्र जङ्गली पशुओ के आखेट सम्बन्धी है। कुछ चित्र यज्ञों, मखशालाओं और युद्ध विषयक है। एक ओर बौद्ध और जैन प्रसङ्गो के भी चित्र हैं। तीनों बन्दी ऐसे कक्षों में हैं जहाँ से न वे एक दूसरे को देख सकते हैं और न कोई बात कर सकते है।]

सुनन्दा—जी चाहता है कुछ गाऊँ, परन्तु अच्छा नहीं लगता। अपने ही स्वर कान को खाने से लगते हैं। राजा जब बात करते हैं तब मन चाहता है कि अधिक न ठहरे। जब चले जाते हैं तब लगता है कुछ बातें और करते। शैव होने पर भी उनके हृदय में कुछ अनुकम्पा है। वे सच्चे धर्म मे दीक्षित किये जा सकते हैं।

(*गर्दभिल्ल का प्रवेश। परस्पर अभिवादन।*)

गर्दभिल्ल—(*विनम्र स्वर से*) आप किससे बात कर रही थीं राजकुमारी?

सुनन्दा—यहां मेरे प्रतिबिम्ब के सिवाय और कौन है?

गर्दभिल्ल—आपके आलोक से यह भवन जगमगाता रहता है। आपके गायन और बोलो से इस भवन मे मधुर मधु भर जाता है। इस भवन की जिन वस्तुओं को आप छू भर देती हैं उनको भाषा मिल जाती है—

सुनन्दा—(*मन की उठती हुई गुदगुदी को नियंत्रित करती हुई*) यदि मै कुरूप होती तो?

गर्दभिल्ल—तो आपके मधुर कंठ और कठोर तप पर उसका क्या प्रभाव पड़ता!

सुनन्दा—तो भी आप इसी प्रकार बात करते?

गर्दभिल्ल—रूप और चरित्र के सामने कौन नहीं झुकता?

सुनन्दा—(*शिथिल स्वर से*) मै वन्दिनी हूँ राजन्य।

गर्दभिल्ल—मैं आपको इसी पल स्वतन्त्र किये देता हूँ, राजकुमारी। उज्जैन की जनता फिर भले ही इसके बदले मे मेरे टुकड़े टुकड़े कर डाले।

सुनन्दा—(*सहसा*) हुँ! क्या? (*वह टहलने लगती है।*)

गर्दभिल्ल—राजकुमारी, आप इस कक्ष में परतन्त्र होती हुई भी स्वतन्त्र हैं और मै स्वतन्त्र होते हुये भी बन्दी हूं। हम लोग अपनी परिस्थिति को एक दूसरे से परिवर्तित कर लें तो कैसा हो।

सुनन्दा—(*स्थिर होकर*) मै समझी नहीं।

गर्दभिल्ल—यदि मैं अपने हृदय के कारागार में आपको बन्द करलूँ तो? (*दृढ़ता के साथ उसकी ओर देखता है।*)

सुनन्दा—इससे आपकी स्वतन्त्रता में कौनसी बाधा पड़ेगी?

गर्दभिल्ल—यदि मुझे आप किसी वैसे ही स्थान में बन्दी करदें तो मुझको सुख ही सुख मिलेगा।

सुनन्दा—मुझको चाहे दुख हो। मेरी स्थिति से आप सुखी नहीं हैं?

गर्दभिल्ल—मैं सौगन्ध खाता हूं राजकुमारी, मै दुखी हूँ। हृदय के कारागार की निविड़ता तभी मधुर होती है जब दो व्यक्ति एक दूसरे के बंदी हों।

सुनन्दा—मै श्राविका हूँ। स्वतन्त्रता का सन्देश दे सकती हूँ न तो मै स्वयं ही परतन्त्र हूँ और न दूसरों को दासता की बेड़ियाँ पहना सकती हूं।

गर्दभिल्ल—मैं आपका प्रदान किया हुआ कोई भी सन्देश ग्रहण कर सकता हूँ।

सुनन्दा—आप भगवान की आज्ञा के अनुगामी होने को तत्पर हैं? आप अहिंसाव्रत का पालन करें।

गर्दभिल्ल—कोयल की कूक, लालमुनैयों की तान और शुक-सारिकाओं की कहानियां प्राण-सा देती हैं। फूलों की निःशब्द भाषा और सौरभ का अनाहत नाद मेरे हृदय के परकोटे हैं। मुझको जिस मत में यह सब मिल जाय वही मुझको स्वीकृत है।

सुनन्दा—इस परकोटे मे कितने जीव जन्तु अभी तक बन्दी किये जा चुके हैं राजन्य?

गर्दभिल्ल—केवल एक—जो मेरी रानी है। अपने यहां दूसरी के लिये कोई निषेध है भी नहीं।

सुनन्दा—आप पशुओं की तरह सच्चे हैं, मै प्रसन्न हूँ। पशुओं पर मुझको दया है।

गर्दभिल्ल—तो पशु समझ कर मुझ पर दया करती रहिये. और स्नेह भी।

सुनन्दा—तब आपको ज्ञान-मार्ग के अपनाने मे कौन सी बाधा दिखलाई पड़ती है?

गर्दभिल्ल—मैं शैव हूँ। अधिकांश उज्जैन निवासी और मालवगण शैव हैं। मै उनका राजन्य— सेनापति – हूँ। मेरे खड्ग और धनुषबाण मयूरगामी की पूजा करते हैं। अहिंसाव्रती होने पर मैं क्या रह जाऊंगा?

सुनन्दा—अर्थात् आप सब कापालिक हैं। इसलिये स्पष्ट न कहते हुये भी आपका संकेत है कि हमारे मत के नहीं हो सकते।

गर्दभिल्ल—मैं कापालिक नहीं हूँ। आप इस बात को जानती हैं। यदि मैं बौद्ध या जैन हो जाऊँ तो आप अपने हृदय को बन्दीगृह मुझको दे सकेंगी?

सुनन्दा—आपको मैं भगवान की अखण्ड मुक्ति दे सकूंगी। आप सन्यासी बन कर जो राज्य स्थापित करेंगे उसमे किसी प्रकार के भी कारागार को रखने की आवश्यकता न रहेगी।

गर्दभिल्ल—शक पुलिन्दों की बाढ़ पर बाढ आ रही है। उन्होंने सिन्धुसौवीर, पञ्चनद, काश्मीर, सुराष्ट्र और लाट मथुरा और पद्मावती पर अधिकार कर लिया है। अब वे मालव, यौधेय, आरक इत्यादि गणों को ग्रसना चाहते हैं। जहां जैसा लाभ दिखलाई पड़ता है वैसे ही वे जैन या बौद्ध मत मे ढलने का ढोंग रच लेते हैं, परन्तु वे अर्म म जन-पीड़न करते हैं और वर्ण संकरता बढ़ाते हैं। बिना धनुषबाण के इनका विरोध कैसे किया जा सकेगा देवी?

सुनन्दा—विरोध करने की बात ही क्या रहेगी? सब मिल कर प्रज्ञा का प्रकाश फैलायंगे! देव-प्रिय चन्द्रगुप्त मौर्य ने जो किया था, फिर हो सकता है।

गर्दभिल्ल—चन्द्रगुप्त मौर्य आर्य थे। ये अनार्य हैं। जैन और बौद्ध हो जाने पर भी ये लोग हत्या, हिन्सा और रक्तपात को नहीं छोड़ते। उनके साथ हमारा अनुराग हो ?

सुनन्दा—ज्ञानी होने पर आप इस समस्या पर विचार कर सकते हैं।

गर्दभिल्ल—मैं मत-परिवर्तन के लिये प्रस्तुत हूँ। परन्तु आपको सन्यासियों का मठ छोड़ कर राजा के भवन को अपना आश्रम बनाना पड़ेगा। आपने मुझको सच्चे पशु की उपाधि पहले ही दे दी है। *(हँसता है।)*

सुनन्दा—*(मुस्कराकर)* मै मठों और सन्यासियों की संख्या बढ़ाने के लिये घर से निकली हूँ न कि कम करने के लिये।

गर्दभिल्ल—यदि मै अपने प्राणों की होड़ लगा कर आपको इस पत्थर-ईंट वाले बन्दीगृह से मुक्त करदू तो आप क्या इस भवन मे स्वतत्र विचरण करती हुई, प्रभा को नहीं बिखेर सकेंगी ? मै आपका शिष्य और जीवन सहचर हो जाऊँगा।

सुनन्दा—आपके मालव कापालिक तमिस्रा को छोड़ कर ज्ञान के आलोक में आने को सहमत हो जायेंगे ?

गर्दभिल्ल—सब तो नहीं, परन्तु अनेक ऐसा करेंगे। किन्तु एक प्रार्थना है—अभी प्रकट रूप से ऐसा नहीं हो सकेगा। मैं गुप्त रूप से मत परिवर्तित कर लूंगा। जब उपयुक्त अवसर आयगा, तब प्रकट हो जाऊँगा।

(सुनन्दा फिर मुस्कराती है।)

सुनन्दा—ज्ञान की भी चोरी! सूर्य की किरणों को भी मुट्ठी के भीतर बन्द कर रखने का साहस! तान को तार के ही भीतर गुप्त रखने का प्रयत्न!! विद्युत को मेघ से प्रच्छन्न रखने का प्रयास!!! मै इसको नहीं सह सकती। यह प्रवञ्चना है। छल है।

गर्दभिल्ल—पशुओं पर दया करने वालों को क्या मनुष्यों पर दया नहीं करनी चाहिये ? सोचिये, मालवगण मुझको व्यर्थ करके छोड़ेंगे।

मै वैसा राजा नहीं हूं, जैसे शकों में या किसी किसी आर्यजनपद में हैं। वे लोग मनमानी कर सकते हैं, मै नही कर सकता। गण की जनता मुझको अपने रोष के प्रवाह में धकेल देगी।

सुनन्दा—(*एक क्षण उपरांत*) सोचूंगी।

गर्दभिल्ल—(*आशा से पुलिकित होकर*) उज्जैन की समिति ने आप लोगों को दीर्घ समय तक वन्दी रखने का निर्णय किया है। मैं ऐसा उपाय करता हूँ जिससे आचार्य कालक और वह यवन भिक्षु—वकुल—तुरन्त बाहर हो जाये।

सुनन्दा—और मै?

गर्दभिल्ल—आपको सोचने के उपरान्त कुछ कहना है न? मै अब उन दोनों के पास जाता हूं।

(*सुनन्दा सोचती रहती है। गर्दभिल्ल का शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान। सुनन्दा वाले कक्ष का द्वार बन्द हो जाता है। भवन के दूसरी ओर कालक और वकुल के कक्ष हैं। उस कक्ष के सामने गर्दभिल्ल का दूसरी ओर से प्रवेश। वह इस कक्ष का द्वार खोलता है*)

गर्दभिल्ल—आचार्य तथा यवन युवक, मै यहा आया हूँ। आप आगन में आजायँ।

(*कालकाचार्य और वकुल अपने अपने कक्षों से बाहर आते हैं*)

कालकाचार्य—आपके प्रमुखों ने तथा आपने हमारे लिये क्या निर्णय किया है?

गर्दभिल्ल—आप लोगों के लिये दीर्घ कारावास की आज्ञा दी है।

वकुल—दीर्घ कारावास! हे भगवान! अन्धेर है! अत्याचार है!! इन मुखियों को इतना समझाया बुझाया, परन्तु उनका विवेक जाग्रत न हुआ!

गर्दभिल्ल—सुनिये, सुनिये मैं अभी राजकुमारी को एक आश्वासन देकर आया हूँ।

कालकाचार्य—कौन राजकुमारी?

वकुल—सुनन्दा न ? क्या आश्वासन दे आये हैं आप ?

कालकाचार्य—वह राजकुमारी नहीं है, केवल श्राविका है ।

गर्दभिल्ल—मैं राजकुमारी को आश्वासन दे आया हूँ कि आप लोगों के निकल भागने की सुविधा कर दूँगा । वे यहीं रहेंगी क्योंकि शीघ्र मेरी पटरानी होने वाली हैं ।

कालकाचार्य—असंभव ! अत्याचारी ! नीच !! अधम !!! नर्क के कीड़े !!!!

वकुल—आचार्य, शान्ति से काम लीजिये । राजन्य, वह कौनसी सुविधा है ?

गर्दभिल्ल—आचार्य तो रुष्ट हो गये हैं । यो ही व्यर्थ ।

कालकाचार्य—पापिष्ठ, प्रमुख सुनन्दा को मुक्त करने के पक्ष मे थे और हम दोनों को वन्दीगृह मे डाल रहने के, परन्तु तूने विरोध किया—

गर्दभिल्ल—मैंने तो हित की ही कामना की थी । सुनन्दा अकेली को छोड़ देने से फिर वह कहा जाती ?

कालकाचार्य—धूर्त ! नीच !! चाण्डाल !!!

वकुल—मुझसे बात करिये । वे इस समय आपे मे नहीं हैं ।

कालकाचार्य—चुप मूर्ख, गर्दभिल्ल, मैं सुनन्दा से बात करना चाहता हूँ ।

वकुल—ठहरिये—

गर्दभिल्ल—राजकुमारी से बात नहीं हो सकेगी ।

वकुल—वह सुविधा है क्या है ? उस सुविधा की बात स्पष्ट कीजिये ।

गर्दभिल्ल—मैं पहरा शिथिल किये देता हूँ । कौशेय की डोर देता हूँ उसके सहारे निकल भागिये । मैं समिति के निर्णय मे सहमत नहीं था, इसलिये आप लोगों को यह सुगम योजना देता हूँ ।

कालकाचार्य—मेरी बहिन—उस श्राविका का क्या होगा ? वह अल्प वयस्क है । (रुद्ध कण्ठ से) हे भगवान !

गर्दभिल्ल—वह सुखपूर्वक मेरे सहवास मे इसी भवन मे रहेगी। आप सुचित हो आचार्य।

कालकाचार्य—तुम्हारे सहवास मे। पिशाच।

वकुल—ठहरिये आचार्य। हमको यह योजना स्वीकार है।

(कालकाचार्य चुप है।)

गर्दभिल्ल—मै अभी डोरा लाता हूँ।

(गर्दभिल्ल का प्रस्थान)

वकुल—इतने चतुर होकर आचार्य; ऐसी असावधानी! हम लोग निकल तो चले फिर सुनन्दा की निष्कृति का उपाय शीघ्र कर लेंगे। *(कालकाचार्य चुप)* देखिये, अपनी सहायता के लिये सम्पूर्ण उत्तम भद्र हाथ मे वज्र को पकड़ेंगे। मथुरा और पद्मावती के शक महाक्षत्रप सिन्धुसौवीर के शाहानुशाह और सुराष्ट्र के क्षत्रप शक तथा यवन, मालवों पर टूट पड़ेंगे। उत्तमभद्रों का जैन और बौद्ध मत तथा सुनन्दा का—इन सबका एक साथ ही उद्धार होगा।

कालकाचार्य—*(धीमें गिरे हुये स्वर में)* मुझको इस समय कुछ नहीं दिखलाई पड़ रहा है वकुल। मेरी बहिन कापालिक गर्दभिल्ल के हाथ में! उसकी दासी होकर!! हा हन्त!!! *(सिर पीटता है।)*

वकुल—आचार्य, आपका महान मस्तक इस तरह की ताड़ना के लिये नहीं सृजा गया है। वह हमारे अस्त्रों का आगार है। सचेत आचार्य। वह आ रहा है।

(कालकाचार्य संभल जाता है। गर्दभिल्ल का रेशम की डोरी लिये हुये प्रवेश।)

गर्दभिल्ल—मैने अपना वचन निभाया आचार्य। अब आप क्रोध का शमन करे। आप देख रहे होंगे कि मै आपकी मित्रता का पात्र हूँ।

(कालकाचार्य दांत पीस कर सिर नीचा कर लेता है।)

वकुल—निस्सन्देह राजन्य, निस्सन्देह। धन्यवाद। डोरी दीजिये।

गर्दभिल्ल—मैं पहरुओं को पीने के लिये मद्य दे आया हूँ। जैसे ही वे सोजायं आप खिड़की से बाहर हो जाइये। मैं अब जाता हूँ। नमस्कार आचार्य।

वकुल—नमस्कार राजन्य, नमस्कार।

गर्दभिल्ल—आचार्य अब भी क्रुद्ध जान पड़ते हैं। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

कालकाचार्य—(*गर्दन ऊंची करके*) जो कुछ भी हो-जैसा कुछ भी हो। अस्तु। (*शिथिल स्वर में*) नमस्कार। मै चिन्ता में था, इस लिये आचार को बिसर गया। हूँ—ऊँ—यह समूचे मालवगण का निर्णय है। हुँ।

गर्दभिल्ल—जी। (*गर्दभिल्ल शीघ्र ही जाता है।*)

वकुल—आचार्य, कुछ वस्त्र ले लीजिये, मै पीठ पर गठरी बांध लूँगा। तब तक पहरुये सोये जाते हैं। फिर खिड़की से निकल जाने में बाधा नहीं पड़ेगी।

कालकाचार्य—यहा से कहा चलेंगे?

वकुल—मैंने अभी अभी मन मे योजना बनाली है। पहले भद्रावती फिर पद्मावती, मथुरा और उपरान्त उत्तर पश्चिम की ओर। वहा से सिन्धुसौवीर।

कालकाचार्य—मेरी बहिन, उस दीन कन्या का क्या होगा वकुल? (*दबे हुये स्वर में*) हा!

वकुल—मालवों का संहार और सुनन्दा का उद्धार। तैयार हो जाइये। विलम्ब मत करिये। (*मुक्तिके दीर्घ उच्छ्वास के साथ सुनन्दा को छोड़ जाने पर निराशा की छोटी सी सांस लेते हुये*) बहिन सुनन्दा को शीघ्र छुटकारा मिलेगा। (*दांत पीसता है*)

(*वे दोनों आवश्यक वस्त्रों की गठरी बांधकर एक एक करके खिड़की के बाहर डोरी के सहारे उतरकर अंधेरे में बिलीन हो जाते है। डोरी खिड़की में बँधी छोड़ देते हैं।*)

(दूसरे पार्श्व से गर्दभिल्ल का धीमी आहट के साथ प्रवेश ।)

गर्दभिल्ल—*(कक्ष के भीतर जाकर और देखकर)* चले गये । अब मैं डोरी को छुटाकर हाथ मे करूँ । किसी ने देख लिया तो पता लगा लिया जावेगा कि उद्धार के लिये कौशेय की डोरी का साधन जुटाया गया था । *(डोरी की गाठ छोडकर अपने हाथ में करता है ।)*

पाँचवां दृश्य

(स्थान गर्दभिल्ल के भवन का एक भाग । समय रात्रि । एक ओर से गर्दभिल्ल आता है । उसके आते ही सुनन्दा का प्रवेश ।)

सुनन्दा—*(कुछ अचम्भे के साथ)* आप कहा !! कैसे !!!

गर्दभिल्ल—राजकुमारी, आपको शुभ समाचार देने के लिये आया हूँ । आचार्य कालक और यवन-यवन वकुल उद्धार पा गये । वे अब तक दूर भी निकल गये होंगे ।

सुनन्दा—और मै यहा अकेली रह गई ! राजन्य, मै भी जाना चाहती हूं । क्या मेरा उद्धार नहीं कर सकते ? मैं अपनी स्वतन्त्रता चाहती हूँ । मैं अपने भाई के पास पहुँच जाना चाहती हूँ । मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये ।

गर्दभिल्ल—आप दुखी न हों । वे दोनों न जाने कहा जा छिपे होंगे, या, चले जा रहे होंगे । आप उनको खोजने के लिये निकलेंगी तो वे दोनों, आप और मैं भी—चारों के चारों, मारे जायेंगे । क्रुद्ध मालव हमको एक को भी न छोड़ेंगे ।

सुनन्दा—तो क्या यहां सब कापालिक ही कापालिक हैं ? क्या उज्जैन में कोई बौद्ध अथवा जैन नहीं है ।

गर्दभिल्ल—सब कापालिक नहीं हैं । बौद्ध अथवा जैन अनेक हैं, परन्तु अश्वक, पदाति इत्यादि सैनिक शैव हैं, और उनमें भी अधिकांश

कापालिक। जो शैव कापालिक नहीं हैं वे कापालिकों के सहायक बन जायँगे।

सुनन्दा—आप तो राजा हैं, क्या आप उनका दमन नहीं कर सकते ?

गर्दभिल्ल—मै राजा नहीं हूं केवल राजन्य हूँ। जता भी चुका हू। जनमत चाहे सुमार्ग पर हो चाहे कुमार्ग पर, उसको अपनी इच्छा के अनुसार चलाने का साधन और बल मुझको प्राप्त नहीं है। युद्ध हो उठे तो अवश्य अनेक अधिकार अपने आप मेरे हाथ में आ जायेंगे, परन्तु वह दूर की बात है। आप, न तो दुखी हों और न हठ करें। थोड़ा धैर्य धरें। शीघ्र ही आपका और मेरा जीवन उन्नत होगा।

सुनन्दा—समझ मे नहीं आता अब मैं क्या करूँ।

गर्दभिल्ल—आपको सखो-सहेलिया मिलेंगी। आप उनके साथ गावें। संसार में जितने सुन्दर पुष्प हैं उनकी नवीन सुकुमारता और सुगन्धि से अपने सौन्दर्य सौरभ की होड़ लगाये। आप अपने अङ्ग अङ्ग को फूलों से सजाकर फूलों को और मुझको कृतार्थ करे।

सुनन्दा—(*निर्बल स्वर मे*) मै यह भाषा नहीं सुनना चाहती। छोटी बातों को बड़े शब्दों मे मत कहिये।

गर्दभिल्ल—मेरे हृदय में और कोई भाषा ही नहीं, परन्तु यदि यह आपको बुरी लगती है तो मै अपने उस हृदय को मरोड़ कर फेक दूँगा जहा उसका जन्म और निवास है।

सुनन्दा—(*इसकी बात को ठीक ठीक न समझकर*) तो क्या आप आत्मघात करेंगे ? इससे बढ़कर और कोई पाप नहीं है। मै निवारण करूँगी। आपको ऐसा नहीं करने दूँगी।

गर्दभिल्ल—(*उसके न समझने से लाभ उठाता हुआ*) मैं अवश्य आत्मघात करूँगा। मुझको पद और अधिकार कुछ नही चाहिये। यदि आप अपना प्रेम मुझको दे सकेंगी तो मै अपने शरीर को ज्ञान के लिये बचा लूँगा। अन्यथा इसके टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा।

सुनन्दा—(*भयभीत होकर*) आप क्या कह रहे है ! प्रेम सदृश क्षुद्र और हीन वस्तु के लिये आत्मघात !

गर्दभिल्ल—प्रेम के लिये तो अपना शरीर क्या, संसार भर को मिटा सकता हू !

सुनन्दा—(*कुछ समझकर*) जो ससार भर को मिटाने की दम भरता है वह न तो मनुष्य के प्रेम को पा सकता है और न देवताओं के प्रेम को। और इस प्रकार का प्रेम कृत्रिम तथा व्यर्थ होता है।

गर्दभिल्ल—(*झेंपकर*) आवेश मे उस प्रकार की बात मेरे मुँह से निकल गई। क्षमा कीजियेगा। (*सिर उठाकर*) परन्तु आत्मवध के विषय मे मेरा निश्चय पक्का है। अडिग है।

सुनन्दा—(*यथार्थता को समझकर*) मैं किसी भी प्रवञ्चना में नहीं आ सकती। (*तीव्र स्वर में*) आप क्या बलात्कार करेंगे ?

गर्दभिल्ल—(*घबराकर*) ऐ ! क्या ? आप क्या मुझको ऐसा नीच समझती हैं ? असम्भव। यदि आपका स्वेच्छापूर्वक प्रेम पा गया तो मेरा जीवन सार्थक हो जायगा। यदि न पा सका तो मेरा वह निश्चय मुझसे सम्बन्ध रखता है। आपको क्या प्रयोजन ? मरने के पूर्व आपकी दया की भीख मागने नहीं आऊँगा। आप केवल सुन लेंगी कि कभी कोई था, और, अब नहीं रहा।

सुनन्दा—मेरा सिर दुख रहा है, आप जायें।

गर्दभिल्ल—मैं जाता हूँ राजकुमारी। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी अनुमति पाये बिना आगे सामने नहीं आऊँगा; परन्तु बिना आपकी अनुमति के, और आपके जाने बिना, दर्शनों की चोरी अवश्य कभी कभी कर लिया करूँगा। (*शीघ्र प्रस्थान*)

सुनन्दा—(*टहलते हुये*) कदाचित् कोरा छल नहीं है। इस दुष्ट नगरी में मेरा और कोई भी नहीं है। यदि गर्दभिल्ल इस प्रकार की बातें न करे तो अब यहा यही एक मेरा हितू है। कहीं सचमुच आत्मघात न कर बैठे।

छटवां दृश्य

[स्थान—उज्जैन नगर का चौक । चौक से विस्तृत मार्ग नगर के भिन्न भिन्न भागो को गये हैं । मार्गों के दोनो ओर भवन, प्रासाद और अट्टालिकायें । एक ओर से कुछ बौद्ध साधुओ और श्वेताम्बर जैनो का प्रवेश । बौद्ध श्रमण सिर घुटाये हैं और नारंगी रंग की धोती पहिने हैं । आचार भी उनका उसी रंग का है । श्वेताम्बरो के वस्त्र श्वेत हैं । वे सिर ढके हुये है । जिस कपड़े से सिर ढका हुआ है उसी से आंखे, नाक, और होठो के अतिरिक्त मुँह भी ढका है । समय—दिन]

एक श्रमण—उन दोनों को कोई देवता बन्दीगृह में से उठा ले गया । मानो या न मानो ।

श्वेताम्बर—हां एक प्रकार से ठीक है । देवता ने बुद्धि दी । बुद्धि ने योजना बनाई । योजना ने हाथ पैर सक्रिय किये । सक्रियता को शक्ति मिली । उस शक्ति ने एक रूप धारण किया । फिर कारागार में से तिरोहित हो जाना एक छोटी सी ही बात तो रह गई ।

श्रमण—किसी बात पर फिर विश्वास न करना, केवल तर्क, युक्ति और प्रत्यक्ष प्रमाण के भरोसे वस्तु का निर्धार करना और प्रत्येक अज्ञेय तत्व का अविश्वास करना, बस यही तो तुम लोगों ने सीखा है ।

श्वेताम्बर—नितान्त भ्रमपूर्ण बात कर रहे हो श्रमण । नासमझी के कारण ब्राह्मण जो आक्षेप हमारे ऊपर करते हैं उसी को उधार लेकर तुमने हमारे ऊपर थोपा है । नहीं तो वह कुमारी सुनन्दा, क्यों कारागार में रह गई ? देवता उसको क्यों यहां छोड़ गये ?

श्रमण—किसी दिन देवता उसको भी त्राण देंगे । किन्तु मैं सुनता हूँ वह जैन है ।

श्वेताम्बर—हूं, तर्क की यही प्रणाली सीखी है क्या ?

श्रमण—तुम लोग भी शैवों और कापालिकों के समर्थक हो ?

श्वेताम्बर—हम इनके समर्थक ! झूठ !! राजा जैनों का पीड़क है और ब्राह्मणों का पिट्ठू तथा कापालिकों का साथी। हम उनके समर्थक ! परन्तु, मै भूलता हूँ, तुम लोग शक पुलिन्दों से मैत्राचारा स्थापित किये हो, और हम लोग मालव पहले हैं और अन्य कुछ पीछे, इसलिये चाहे कुछ कह लो। कापालिकों के समर्थक !!

(नेपथ्य मे)—'कापालिकों की निन्दा कौन कर रहा है ?'

(कुछ कापालिकों का प्रवेश। इस समय वे लोग गले में मुंड माला नही डाले है। डंडे लिये हुये है।)

एक कापालिक—*(डंडा तानकर)* कापालिकों की निन्दा कौन कर रहा था ? बोलो। तालू के निकट जीभ की जड़ है, और तालू खोपड़े के नीचे का स्थान का नाम है। खोपड़ा चाहे घुटा हो चाहे कपडे से ढका हो, डण्डे के सम्पर्क मे आते ही जीभ को आदेश देता है—भीतर बनी रहो, भीतर बनी रहो।

श्रमण—देखो जी, बहुत आँखे मत दिखलाओ। हम मारना नहीं जानते तो मरना अवश्य जानते हैं। यह है हमारा सिर, मारो।

श्वेताम्बर—हम मारने की इच्छा नहीं करते परन्तु हमारे मित्र मारना जानते हैं, और इच्छा की धारा भी किसी विशेष परिस्थिति में उत्पन्न हो सकती है।

कापालिक—हमारा राजा ढुलमुल है, नहीं तो तुम लोगों को कभी का सिन्धुसौवीर की ओर धकिया दिया जाता।

श्वेताम्बर—और तुम यदा, विराम विश्राम के साथ अपना डण्डा घुमाते रहते ! जाओ कापालिक, तुम भी हाट में बैठकर हमारी मनमानी आलोचना करलो। मालवों की यह स्वतन्त्रता सबको एक समान प्राप्त है।

श्रमण—तुम्हे यदि अपने डण्डे और कुठार से ही वार्ता करनी है तो उत्तर-पूर्व उत्तर-दक्षिण तथा पश्चिम में उत्तमभद्रों के पास चले

जाओ या पश्चिम-उत्तर में सिन्धुसौवीर। आटा दाल के भाव का पता लग जायगा।

एक कापालिक—हा! ये हैं तुम्हारे सगे सम्बन्धी!! हमारे त्रिशूल की भाल, कुठार की धार, बाण की नोक और मत्त मयूर की चंचु तुम्हारे इन मित्रों को भूतकाल में मिला देने के लिये चञ्चल हो रही है।

(कापालिक की आंखो से क्रोध टपकने लगता है। दांत पीसता है और ठोक पीट करने की सुविधा की खोज में देखता है कि इधर उधर कहीं कोई सैनिक या चाट तो नहीं है। श्रमण और श्वेताम्बर बच कर निकल जाना चाहते है। कापालिक पैंतरे बदलते हैं। नेपथ्य में गायन।)

❀ गीत ❀

(तिलक कामाद)

सब जन मिल हरि नाम पुकारो।
तन मन प्रतिपल हरि पर वारो।
माया पर से चित्त विरत कर।
जीवन की प्रतिपत्ति सँवारो।

[एक भक्त वैष्णव का नेपथ्य से गाते हुये प्रवेश। वैष्णव है। माथे पर रोरी का सीकिया तिलक अंकित है। आचार पीले रंग का ओढ़े है। लम्बे केशों मे तैल है, संवारे हुये है। बालों पर श्वेत और लाल फूलों की माला है। भुजा पर केयूर हाथ मे वलय गले में स्वर्ण का हार और उँलियों मे मुद्रायें पहिने है। इसको देख कर कापालिकों का ध्यान बट जाता है। वे वैष्णव को मुँह चिराते हैं। वैष्णव के आने पर श्रमण और श्वेताम्बर चले जाने का प्रयत्न करते हैं। कापालिक बीच में पडकर रोकना चाहते हैं। वैष्णव उनके पास जाता है।]

वैष्णव—इन लोगों को क्यो छेड़ते हो आप। जो समय इस छेड़छाड़ में और नाना प्रकार के शोरे मचाने में नष्ट करते हो उसका सदुपयोग भगवद्भक्ति में ही हो सकता है। भगवान को अपना स्वामी, पति, सर्वस्व समझ कर अपने को उनके चरणों मे डाल दो। नारायण, नारायण।

कापालिक—भगवान पति! सो कैसे वैष्णव? हम तो स्त्रिया नहीं है। (*बौद्ध और जैन हट जाते हैं*) अरे ओ घुटमुण्डो, ओ बच्चू वर्ग, कहा जा रहे हो? हम तुमको चबाये नहीं जाते। थोड़ा ठहरो, डण्डा खोपड़ी का प्रणय शेष है। ठहरो, सुने जाओ। यह स्त्री हृदय वाला पुरुष क्या कहता है।

(*वे लोग ठमक जाते हैं*)

वैष्णव—कापालिक सज्जन, भगवान का नाम किसी बहाने भी लो, लो तो। जब विपद आती है तब भगवान के सिवाय और कोई आश्रय नहीं रहता। उस समय आँख के आसू अपने दर्पण में उनको देखना चाहते है और वे नहीं दिखलाई पड़ते। इन दीन जनों को मत सताओ।

श्वेताम्बर—हम दीन जन नही हैं। श्रमण कदाचित् हों।

कापालिक—(*हँसकर*) वैष्णव, भगवान के सामने ओढ़नी ओढ़ कर किस प्रकार नाचते हो, कुछ यहा चौक मे भी प्रदर्शन करो। इन लोगों को भी ओढ़नी ओढना सिखलाओ।

(*श्रमणों और श्वेताम्बरों का प्रस्थान।*)

वैष्णव—कापालिक सज्जन, मरने के उपरान्त शरीर की भस्म मात्र रह जायगी। उसको भी वायु कहीं ऐसा उड़ा ले जायगी कि एक कण का भी पता न चलेगा। फिर केवल वही ओढनी रह जायगी जिसे ओढ़ कर भगवान के सामने कापे थे। वही ओढ़नी जीवन की रखवाली की समर्थता रखती है और वही मरने के पश्चात् उस लोक की।

(वैष्णव की आँखें आनन्द मे झूम जाती हैं और वह सखी भाव मे थोड़ा सा नाचकर, बासुरी बजाने की भाव भगी मे खड़ा रह जाता है ।)

कापालिक—यदि ऐसे मे कोई आपको दो चाटे कनपटी पर जड़ दे तो कौन सा स्वर और ताल बनेगा बहूजी ।

(चौक से आने जाने वाले चले जाते हैं । दो रह जाते हैं ।)

एक—*(दूसरे से)* अरे चलो भी, क्या देखते हो, यह तो यहा नित्य ही होता रहता है ।

दूसरा—हा कुछ है ही नहीं, कुछ धौलधप होती तो ठहर भी जाते । चलो । *(वे जाते हैं ।)*

दूसरा कापालिक—अजी पैर में घुँघरू और पहिन लेते !

एक कापालिक—और आँखों में काजल लगा लेते !

एक और कापालिक—हाथों में चूड़िया, दातों में मिस्सी और मूँछ सपाट ।

एक कापालिक—छाती पर कचुकी ।

दूसरा कापालिक—कानों में बालियाँ और झूमके, नाक मे नथ और बेसर—पूरा शृङ्गार करो वैष्णव जी ।

वैष्णव—कितना भी ठट्ठा करो, भगवान रीझते हैं भक्तों पर ही ।

कापालिक—रे भक्ति पर । रे नपुसक ।।

वैष्णव—भगवान के सामने सब नपुंसक हैं, वाचाल कापालिक ।

कापालिक—हमारे भगवान शङ्कर तो वीर्य और तेज के ब्रह्माण्ड हैं और हम लोगों को वे इसी का वरदान समझते हैं । तुम्हारे विष्णु क्या हैं ? उँह ।

वैष्णव—भगवान शंकर डमरू बजाते बजाते विष्णु भगवान के सामने नाचते नाचते नहीं अघाते । परन्तु तुम तो मूर्ख हो । तुमको तो शङ्कर भगवान भी नहीं समझा सकते ।

सब कापालिक–ऐं! मारो इस नारीमुख को!! मारो इस नपुंसक को।

(वैष्णव भागता है। उसके पीछे पीछे कापालिक जाते है। दो नागरिको का दूसरी ओर से प्रवेश।)

पहला—नगर में इतना द्वन्द होता रहता है कि कुछ ठिकाना नहीं।

दूसरा—चोर उचक्को का कोई उपद्रव नहीं परन्तु धर्म के धूमकेतुओं के मारे यह धरा थरथरा जाती है। इनका नियन्त्रण नहीं हो पाता।

पहला—हो कैसे? धर्म के ऊपर विचार और आचरण करने की इतनी स्वतन्त्रता बढ़ गई है कि नर–बलि से लेकर पुरुष का स्त्री बनना तक सहज ही होता रहता है, और, बड़े बड़े वाद्-विवाद परिषदों से लेकर गलियों और जनमार्गों पर तक, खुल्लमखुल्ला मुण्डभंजन, आये दिन की घटनायें हैं। सब धर्म के नाम पर।

दूसरा—राजा नहीं कुछ कर सकता है?

पहला—अरे जब हमारी समिति और ये इतने प्रमुख, अभिजात, कुछ नहीं कर सकते तो राजा को अधिकार ही क्या? और फिर इन कापालिकों का पक्षपात समिति में इतना बढ़ गया है कि न्याय की गति ही रुद्ध हो गई है। उन तीनों जैन सन्यासियों को पकड़ कर ये कापालिक मार डालना चाहते थे। राजा ठीक अवसर पर पहुँच गया, बचा ले आया। तो भी उन लोगों को बन्दीगृह में डाल दिया। उन्होंने क्या अपराध किया था?

दूसरा—दो तो उनमें से निकल भी भागे।

पहला—निकल भागने की बात पीछे। मै पूछता हूं उनका अपराध क्या था?

दूसरा—वे उस दिन मेले में बहुत अनुचित बक रहे थे।

पहला—इसलिये उनको मार डालना चाहिये था?

दूसरा—वे उत्तमभद्र थे। उन्होंने कापालिकों का और यज्ञ करने वाले ब्राह्मण का बहुत अपमान किया था—और फिर अपने यहां कापालिकों को केवल दिन में नर-बलि करने का निषेध है।

पहला—यही तो अव्यवस्था का कारण । चाडालो और सज्जनों के बालक भी इस बलिदान के मिस कापालिक मार डालते हैं। यह क्या धर्म है ! मेरा बस चले तो सब कापालिकों को वन्द-गृह मे बन्द कर दूं और कहदूं कि अब करो एक दूसरे का बलिदान। परन्तु ये लोग युद्धो म काम आते हैं इसलिये इनके अधर्म का दमन नहीं कर पाते।

दूसरा—बर्बर बनवासी भी तो इस प्रकार के बलिदान करते हैं। उनको भी तो नही रोका जाता।

पहला—उन्हीं से कापालिकों ने नर-बलि की प्रथा सीखी होगी। परन्तु वे क्षम्य हैं क्योंकि अनजान हैं। ये अक्षम्य हैं क्योंकि समग्र दर्शन शास्त्र के ठेकेदार होते हुये भी ये इतने कुकर्म करते हैं।

दूसरा—वे जो दो निकल भागे, जानते हो उसमें राजा की आंख मिचौनी थी? वे दोनो उस रात और एक दिन, एक जैन के घर ठहरे रहे, फिर चुपचाप किसी अन्धेरे में सरक गये।

पहला—राजा ने क्यों निकल जाने दिया?

दूसरा—क्योंकि उसके मन मे निष्ठुरता कम है।

पहला—उसने बहुत अच्छा किया।

दूसरा—अभिजातों में कुछ सुग सुग चल रही है कि राजा को दण्ड दें या न दें।

पहला—जनता को बुरा नही लगा। प्रमुख और अभिजात कुछ भुनभुनाकर रह जायेंगे।

दूसरा—वे दोनो निकल भागे हैं परन्तु अपना एक बड़ा अङ्ग तो पीछे छोड़ गये हैं—राजकुमारी सुनन्दा को। उसका विवाह अपने राजन्य के साथ होगा।

पहला—तब धारा के उत्तमभद्रों से मालवगण के प्रति वैर-भाव की मात्रा में कमी आजायगी, इसलिये कदाचित् गर्दभिल्ल ने उन दोनों मुनियों के निकल भागने में आंख-मिचौनी की होगी।

(दोनो का बातें करते हुये प्रस्थान)

सातवां दृश्य

[*स्थान—जङ्गली पहाड़ो का मार्ग। समय दिन। आगे आगे कालकाचार्य और पीछे वकुल का प्रवेश। कालकाचार्य चिन्तामग्न है।*

वकुल—आचार्य, आप अपने पूर्व निश्चय पर आजाइये। आप यदि भ्रम में पड़ जायँगे तो इस भूमि की कुशल नहीं।

कालकाचार्य—(*किसी विचार में से उभरता हुआ सा*) वकुल, अभी लौट पड़ने के लिये समय है, अवसर है। जिन शकों को सहायता के लिये आमन्त्रित किया है वे आकर फिर यहां रुक जायँगे, यहां की जनता का शासन करेंगे। देश परतन्त्र हो जायगा।

वकुल—गुरुदेव, जनता, भूमि और देश केवल भौगोलिक सञ्ज्ञायें ही तो हैं। सोचिये कितने अधर्म और कितनी अनीति का प्रसार नहीं है। आपके उपदेश और शास्त्रार्थ का कापालिकों पर क्या प्रभाव पड़ा?

कालकाचार्य—(*उखड़ता हुआ सा*) हा, कापालिक! ओह कापालिक!! उनकी अपेक्षा विषधर भुजङ्ग अच्छे!!!

वकुल—अधिकांश मालव और यौधेय शैव हैं, कापालिकों के मौसेरे भाई!

कालकाचार्य—कुछ जैन और बौद्ध भी हैं इन दोनों जनपदों में!

वकुल—थोड़े समय उपरान्त सब मिट जायँगे। कापालिक उनकी भी मुण्डमाल पहनेंगे।

कालकाचार्य—(*क्षुब्ध स्वर में*) असंभव। ऐसा नहीं हो सकेगा।

वकुल—हो नहीं सकेगा ! स्पष्ट हो रहा है गुरुदेव । कापालिकों ने अहिंसावादियों को रौरव नरक की यातनायें दे रखी हैं, उनको अधिकार पदों से उतार दिया गया है । वे अपने धर्म का अनुसरण नहीं कर सकते ।

कालकाचार्य—(*अधीर होकर*) यह सच है, यह सच है, वत्स ! परन्तु शकों को अब मैं उज्जैन पर चढ़ा ले आऊँगा, तब मेरा देश परतन्त्र हो जायगा, मैं देशद्रोही कहलाऊँगा । वकुल लौट चलो ।

(*लौटने को होता है*)

वकुल—गुरुदेव, अत्याचारी गर्दभिल्ल उज्जैन में बहिन सुनन्दा को सताता रहे ! कापालिक और ब्राह्मण यज्ञों मे नरों और पशुओं को काट कर डालते रहे !! और आप इतने आगे गये हुये पगों के लौटाने की बात करें !!!

कालकाचार्य—(*सिर पर दोनों हाथ रख कर*) ओह !!!

वकुल—किसी भी निस्सार भ्रम के मोह में मत पड़िये ! दूसरे लोक के देवों ने मालवों और यौधेयों को दण्ड देने के लिये शकों को उत्पन्न किया है और आपको उनके निमन्त्रण का निमित्त बनाया है । नदी की चली हुई धार का प्रवाह, छोड़े हुये बाण का वेग, निकला हुआ शब्द और भस्म किया हुआ शरीर फिर लौटकर नहीं आता । उसी प्रकार आपका इतना बढ़ा हुआ पग, शकों को दिया हुआ निमन्त्रण और उनका इस देश मे प्रवेश अब कैसे अवरुद्ध होगा ?

कालकाचार्य—(*अधीर होकर*) वकुल ! वकुल !!

वकुल—आचार्य, गुरुकुल में आपकी वाणी का जो प्रसाद मैंने पाया था उसी का तो उपयोग कर रहा हूँ; वैसे मुझमें बुद्धि ही कितनी है ? सोचिये आपके इस अनिश्चय का बहिन सुनन्दा के भविष्य पर कितना बुरा प्रभाव न पड़ेगा ।

कालकाचार्य—हूँ (*सोचता है*) शक नायक मेरे विषय में सोचेंगे मै नितान्त हीन मनुष्य हूँ, बिलकुल अविश्वनीय। और—

वकुल—और, गुरुदेव, लाखों करोड़ों शक और हूण, ऋषिक और विङ्गुण, जैन और बौद्ध बनने को तैयार बैठे हैं, अब तो, निर्भ्रम होकर अग्रसर होइये और उनका सञ्चालन करिये।

कालकाचार्य—हा—हुँ—ठीक कहते हो वत्स। मैं कुछ समय के लिये विमन क्यों हो गया था! आश्चर्य है! वकुल बढ़ो कापालिकों और गर्दभिल्ल को दण्ड देना ही पड़ेगा।

(यवनिका।)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(स्थान—शमीनगर, सिंध के उत्तरी भाग में झेलम (वितस्ता) नदी जहां सिंध से मिली है, उस सङ्गम से दूर, नीचे। समय दिन दोपर के उपरान्त। शमीनगर के एक विशाल प्रासाद में राजसभा। महाक्षत्रप कुजुल, क्षत्रप भूमक, महाक्षत्रप नहपान, नहपान का जामाता उषवदात, और मथुरा इत्यादि के क्षत्रप तथा शक नायक। राज सभा में ईरानी तडक भडक है। कुजुल को छोड कर ये सब क्षहरात शक है। सिर के बाल या तो कटे हुये हैं या मुड़े हुये। अधिकांश चपितनासिका वाले, रंग ताम्रवर्ण कुछ की आंखें नीली या कंजी ठोड़ी पर थोड़े से बाल होठो के दोनो ओर मूछो की रेखाएं मात्र, दूरसे देखने पर मूछें मालूम ही नही पड़ती। घुटनों के ऊपर तक के झागे और टखनो तक पजामे। बिना चोंच के जूते पहिने हैं। चौड़े फन की तलवारें कमर में डाले है। गले में स्वर्ण और मोतियों

की मालायें और कलाइयों पर जड़ाऊ पट्टे। पिण्डलियों पर, जूतो के ऊपर, टकोरे छत्रप ऊँचे मञ्च पर जड़ाऊ और गद्दे, चौकियों के ऊपर बैठे हुये है। अन्य सरदार नीचे की चौकियों पर। सरदारों के वस्त्र कुछ कम तड़क-भड़कदार हैं, वैसे, उनकी वेश भूषा- छत्रपो जैसी ही है। महा छत्रप कुजुल त्रिपुण्ड लगाये हे। वह औरों की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँची चौकी पर बैठा है। उसकी जंघा के निकट एक विशेष प्रकार का हथियार—सगर—रक्खा है। वह लोहे की गदा है। कुजुल की ठोडी पर बहुत ही थोड़े बाल है और मूँछ की जगह बाल और भी बहुत कम। उसका सिर बहुत मुड़ा हुआ है मुड़े हुये सिर पर लम्बा किरीट है। नाक तो सभी की चिपटी है, परन्तु कुजुल की बहुत चपटी है। उसकी आँखें भी कुछ अधिक धसी हुई हैं। एक ओर ऊँचे आसनो पर कालकाचार्य और वकुल बठे हुये हैं। ये दोनों बौद्ध श्रमण के वेश मे हैं—नीचे कतक ऊपर उत्तरीय, उत्तरीय के नीचे कमर तक धोती, पीठ से कन्धों तक आई है और कन्धों से नीचे छाती पर जाकर दोनों ओर उसमे गांठ बंध गई है। भूमक की लड़की तन्वी आर्य वेश धारणी है। उसकी नाक सीधी है तथा ललाट प्रशस्त। वह अति सुन्दर। आयु लगभग बारह-तेरह वर्ष। वह भूमक के पास बैठी हुई है। द्वारपाल चौर लिये हुये द्वारों पर खड़े हुये हैं। एक ओर बड़ा नगौड़ा रखा हुआ है। उसके पास एक छहरात-शक सिपाही चोट के लिये चुप-चाप खड़ा है। प्रासाद के बाहर दूरी पर छहरातों की बडी छावनी है जिसका शब्द अभी कभी सुनाई पड़ती है।)

कुजुल—आज कुछ निश्चय करके ही उठिये। ये दोनों जैन महात्मा अब अधीर हो उठे हैं।

नहपान—बौद्ध हैं, बौद्ध, महाछत्रप।

कालकाचार्य—नहीं है।

नहपान—और वक्र प्रावार?

कालकाचार्य—उनका रङ्ग उन्हीं का जैसा है। परन्तु हमारी समस्या से मत का सम्बन्ध ही क्या है क्षत्रप।

कुजुल—ठीक कहते हो महात्मा जी। हमको किसी के मद से कोई प्रयोजन नहीं। मै स्वय शैव हू। सत्यानाश करने वाले शिव का प्रतिनिधि। जहा जाता हूँ, बिना किसी पक्षपात के सबके शिरों का एकसा कचूमर निकाल देता हूँ।

कालकाचार्य—शैवों के साथ कोई पक्षपात किया जायगा?

कुजुल—रंचमात्र भी नहीं। मुझको ज्ञात है शिव के गण आपस मे लड़ भी जाते हैं। और शिव को यह सब देखकर बड़ा भारी विनोद प्राप्त होता है। वे रक्त की नदिया बहते और चकनाचूर किये गये खोपड़े देखकर ताडव नृत्य करने लगते हैं।

भूमक—ऋषिक प्रवर, हम लोगों को बौद्धों पर दया रहती है। उत्तमभद्र इत्यादि बौद्ध हमारे मित्र हैं। हम उनको थोड़ा सा बरका देते हैं।

कुजुल—शककुल के तारे वीर भूमक, आपको भली भाति ज्ञात है कि हम शैव, ऋषिक, शक या क्षहरात बौद्धो पर अब बिलकुल हाथ नहीं उठाते, परन्तु ये जो आर्य-बौद्ध हैं (*दांत पीसकर*) इनकी चटनी बना डालना तो हमारा नित्य नियम है।

कालकाचार्य—मालव जनपदों में बौद्ध और जैन भी हैं कुछ वैष्णव भी। शैव अधिक हैं।

उषवदात—यह वैष्णव कौनसी नवीन निष्पत्ति है?

बकुल—मैं बतलाता हूँ। आर्यों ने हमारे देश से अपोलो और जुपिटर की कल्पना को चुराकर जो खिचड़ी पकाई है, विष्णु उसी का परिणाम है। उसके हाथ चार कर दिये गये हैं। और वैष्णव—

कालकाचार्य—चुप, चुप। जाने न समझे। वैसे ही चबड़ चबड़ करता है। अपोलो और जुपीटर की खिचड़ी! मूर्ख कहीं का!! क्षत्रपो, विष्णु आर्यों का अति प्राचीन देवता है। सहस्रों लाखों वर्ष पुराना। विष्णु, जिन और बुद्ध का पुजारी है, सेवक है। उसको वैदिक आर्य नाच नाच कर और गा गा कर पूजते हैं।

मथुरा का क्षत्रप—हमने पद्मावती में यह स्वाग देखा है। परन्तु है मनोहर। हमलोग अपने राज्य में इस मत के मानने वालो को मनमानी पूजा करने देते है। उनका समय षडयन्त्रो की ओर नहीं जाता। पर हमारे यहा के शैव बडे दुष्ट और कुटिल हैं। हम उनका उपचार कसके करते हैं। अर्थात् जो शक या क्षहरात नहीं हैं—उनका।

कुजुल—क्षहरातों और शकों में कुछ अन्तर तो है नहीं। विवाह सम्बन्ध होते हैं। नातेदारिया हैं।

भूमक—जो आर्य अपने को शक कहने लगे हैं हम उनके साथ भी सम्बन्ध करने को प्रस्तुत हैं, क्योंकि जिस प्रकार ऋषियों और द्विजगणों में वर्ण व्यवस्था नहीं है, उसी प्रकार हमारे यहा भी नहीं है।

बकुल—आर्य अपने को शक कहने लगे हैं! कौनसे आर्य?

भूमक—हम वैदिक आर्यों को मार डालने या दास बनाने के पहले उनको एक अवसर देते हैं—वे अपने को शक कहने लगें और बौद्ध होजायँ तो बचा दिये जाते हैं।

कालकाचार्य—मुझको ज्ञात है, और समझता हूँ कि इन भावोन्मादी आर्यों के प्रति यह नीति है भी उचित।

कुजुल—हम आर्य शैवों पर कुछ कृपा करते हैं—या तो दास बना लेते हैं या नाक कान काटकर छोड़ देते हैं।

वकुल—आर्य शैवों के बराबर बुरा और कोई हो हां नहीं सकता।

कुजुल—यह भी उत्तम भद्र हैं क्या कालक जी?

कालकाचार्य—नहीं। इनका वंश यवन है।

कुजुल—सुन्दर है। सलौने हैं। मैंने कपिशा के राजा हिमाद्रि को जो यवन है, पराजित करके भी उसके सिक्के को एक ओर उसका चिन्ह रहने दिया है। (*सोचकर*) परन्तु मै अपने सिक्के पर अपनी जाति की पूरी कहानी लिख दूँगा। उसको एक ओर हमारे देश का दो कुब्बों ऊँट और दूसरी ओर बैल और त्रिशूल रहेगा।

नहपान—इसका अभिप्राय महाक्षत्रप?

कुजुल—बैल शिव का वाहन है। हम शैव हैं। इसलिये दूसरी ओर बैल, और त्रिशूल हमारा हथियार। ऊँट हमारा वाहक और मित्र।

नहपान—मैं अपने सिक्कों पर शकों का निजत्व बनाये हुये हूँ।

कुजुल—आपका निजत्व है कहा? आप लोग तो जहाँ जाते हैं वहीं के रंग में रंग जाते हैं!

भूमक—हम अपना निजत्व जैसा बनाये रखते हैं उसको यह भारत-वर्ष तो क्या संसार भर जानता है।

कुजुल—हम भी जानते हैं। हमारे ऋषिक जानते हैं और मेरू, कुश तथा ऐरावण मे अवशेष आपके भाई बन्द भी जानते हैं। आप शहानुशाही शकों, और क्षहरात शकों के अनेक समूहों में जैसी कुछ परस्पर कलह चलती रहती है वह भी हम जानते है। आपके छ्यानवे कुल परस्पर जैसा लतियाव करते रहते हैं वह भी हमसे छिपा नहीं है। अभिमान मत करो क्षत्रप।

(*झूमता है और आखें तरेरता है।*)

भूमक—और इन्हीं लातों से हम आर्यों के भारत को जैसा कुछ रोदते रहते हैं वह भी आपसे न छिपा होगा महाक्षत्रप। अट्ठाईस हाथ लम्बे लट्ठे पर फहराने वाले आठ हाथ चौड़े और बारह हाथ लम्बे भगवे आ झण्डे को सिन्ध और सुराष्ट्र में किसने झुकाया ? मथुरा और पञ्चाल में—

कालकाचार्य—(*तुरन्त खड़े होकर*) सुचित ! शान्त !! क्षत्रपो ! शक और ऋषिक वीरो !! आप तो वैदिक आर्यों के विषय चर्चा करिये। विवाद करके परस्पर के भेदों को मत बढ़ाइये। वैदिकों को विदित हो गया है कि आप किसी बड़े अभिप्राय की सिद्धि के लिये भारतवर्ष के इस छोर में एकत्र हुये हैं। मालव यौधेय, आरक जट्ट इत्यादि कटिबद्ध हो उठे हैं। आन्ध्र का शातकर्णि भी चपल हो रहा होगा। और, आप लोग छोटी छोटी सी बात के लिये लड़ पड़ते हैं ! शान्त वीरो !!

वकल—विदिशा का रामचन्द्र नाग भी, जो कट्टर शैव है, मालवों का साथ देगा।

नहपान—कादम्ब मंगवाओ और कर्पासिक नर्तकियों को बुलवाओ। संसार भर के विवाद और कलह सुरापात्र और उनकी छमछम में डूब जायंगे।

(*सैनिक नगाड़े पर चोट देता है। द्वार पालों का प्रवेश।*)

द्वारपाल—आज्ञा दो।

नहपान—सुरा और सुरा के पात्र तथा कर्पासिक नर्तकियों को भिजवाओ।

(*द्वारपाल जाते हैं।*)

कुजुल—मै गुडापर्ण की सन्तान हूँ, जिसने अपने नाद और बाहुबल से संसार को कम्पित कर दिया था, इसलिये मुझको कभी कभी क्रोध आ जाता है; परन्तु अब वह सब घुल जायगा। मैं, और मेरे ऋषिक शकों और तहरातों के मित्र हैं।

उपवदात—वे दोनो एक ही हैं, महाक्षत्रप।

तन्वी—पिताजी, इन्होंने किसी नाथ का नाम लिया था। क्या इस देश में साप भी राज करते हैं?

भूसक—बेटी वह साप नहीं है। मनुष्य है।

वकुल—परन्तु वह सापों की पूजा करता है।

कालकाचार्य—सापों को बचाने के लिये भगवान ने एक जन्म में अपने शरीर का त्याग किया था, तब से आर्य लोग सापो की पूजा करने लगे है।

उपवदात—परन्तु यह पूजा तो अनायो में और अन्य देशों में भी होती सुनी गई है।

नहपान—विदिशा का रामचन्द्र शैव भी है, और सर्प-पूजक भी है!

तन्वी—तो वह नाग क्यों कहलाता है?

नहपान—इसी कारण तो, बेटी।

तन्वी—विदिशा कहा है?

भूसक—हम लोग उस ओर भी जायेंगे। तुमको सब देश और नगर दिखलायेंगे। रेंगने वाले नागों को लकड़ी से मारा जाता है, राज करने वाले नागों को खडग से काटेंगे।

कुजुल—मैं अपने सगर से इन नागों का सिर भुर्ता करूँगा, देखना बेटी।

नहपान—आपकी बात से स्मरण हो आया कि रसपान और नाच गान के उपरान्त आगे की योजना पर विचार करना है।

(सेवक मद्य, सुरापात्र, इत्यादि लाते है। उनके पीछे-पीछे नर्तकियों का प्रवेश। सुरापान आरम्भ होता है। और नर्तकियाँ गाती नाचती है। नर्तकियों का रंग उजले तांबे के रङ्ग का है और वे चटकदार वस्त्रालंकार पहिने हैं। हाथों में गुदने गुदवाये हुये है। सब तरुण

अवस्था मे है। वाद्य तार तन्तु के। ताल के लिये मृदङ्ग। नर्तकियो का गायन—)

❀ गीत ❀

(राग भीमपलासी मे)

कलशों में जो बची हुई है उसको तुमने क्यों छोड़ा ?
मौज मनाते जीभ थकी क्यो, आंखो ने क्यो पथ मोड़ा ?
असि की धारा से खरतर है ओजो का वह जो अभिमान,
स्वर्ग नरक की संधि सलोनी, जीवन की वह मीठी तान,
हुआ नही, जो होने वाला, उसने नाता क्यो तोड़ा ?
कलशो में जो बची हुई है उसको तुमने क्यों छोड़ा ?

(*गायन की समाप्ति पर नर्तकिया चली जाती है।*)

तन्वी—मैं नाचना गाना सीखूंगी।

भूमक—सिखला देंगे।

तन्वी—मै शीघ्र सीखना चाहती हूँ। हुं, शीघ्र।

भूमक—हा, हा, शीघ्र।

तन्वी—और मै गुदने भी गुदवाऊँगी।

भूमक—इतने बहुत ! तुम्हारा गोरा हाथ भद्दा दिखलाई पड़ने लगेगा।

तन्वी—मै तो गुदवाऊँगी।

भूमक—अच्छा हाथ पर तुम्हारा और अपना नाम गुदवा दूँगा। बस !

तन्वी—(*प्रसन्न होकर*) हा, हा, पिता जी, बहुत ठीक।

कालकाचार्य—उज्जैन का राजा गर्दभिल्ल बड़ा पापी और दुष्ट है। जनपद उसके मारे घबरा उठा है। कापालिकों को आश्रय देता है। कापालिक मनुष्यों का बलिदान करते है।

वकुल—भूमि बहुत उपजाऊ, हरी भरी और सोने चादी से पुरी हुई है। यज्ञों की ओट में ब्राह्मण बहुत लूटते खाते हैं।

(सुरापान बढ़ता है ।)

भूमक—मैने भी सुना है । विचित्र देश है । विलक्षण रीतिया हैं । हाथ धोने के पहले पैर धोते हैं ! पैजामे के बन्ध की गाठ पीछे, नितम्बो के ऊपर लगाते हैं । ह ! ह ! ह ! कसे हुये जूते पहिनते हैं जिनके पीछे की लम्बी पुच्छी पिंडली के नीचे लौट जाती है । कटार को दाहिनी ओर बॉधते हैं मूर्ख !! प्रत्येक बात मे स्त्रियों की सम्मति पहले लेते हैं !!! हाथ मिलाते हैं गदेली की पीठ से ! ह ! ह ! ह ! बाईं ओर से दाहिनी ओर लिखते हैं । पुस्तक का नाम अन्त मे देते हैं !! इनके यहा बुनकर अशुद्ध ! खटीक और शौंडिक शुद्ध !! मूर्ख हैं !!! मूर्ख हैं !!!! शौंडिक और सुरा वितरित करो ।

(शौंडिग सुरा बांटता है ।)

उषवदात—परन्तु इनके ब्राह्मण बहुत चालाक, चतुर, विद्वान और प्रभावशाली हैं । जनता उनको बहुत मानती है ।

कालकाचार्य—वे लोग बडे पाखण्डी हैं, धूर्त और भ्रमों का जाल फैलाने वाले ।

उषवदात—हा, हा, सो तो है ही । कुछ दे दिवा कर उन लोगो को हाथ मे ले लेंगे । वे सस्कृत बोलते हैं । उनके संस्कृत मन्त्रों मे जादू होता है ।

तन्वी—में गुदना संसकिरत मे गुदवाऊंगी ।

भूमक—अपनी बोली आरशीकान्त है और लिपि खरोष्ठी । उसी से गुदना लिखा जायगा ।

तन्वी—नही, मै संसकिरत में गुदवाऊंगी लोग समझेंगे मै जादूगर हूं ।

भूमक—अच्छा, अच्छा अब बात करने दो ।

कुजुल—बेटी तुम जाओ यहा से । खेलो कूदो । नाचना गाना सीखो ।

तन्वी—हूँ, मुझको यही अच्छा लगता है !

भूमक—मेरे कोई भाई नहीं है जो उत्तराधिकारी होता। पुत्र भी नहीं है। इसी को भाई और पुत्र समझता हूँ! शौण्डिक, सुरापात्र हटा ले जाओ।

(शौण्डिक सुरा-पात्र उठा ले जाता है।)

कुजल—आचार्य जी, कितने उत्तम भद्र हमारा साथ देने के लिये रणक्षेत्र में आयेंगे ?

कालकाचार्य—एक लाख की आशा करता हूँ। एक तिहाई के लगभग भद्रावती से, शेष सुराष्ट्र के उत्तर—पुष्कार से।

घटाक—कितने हाथी ?

कालकाचार्य—दो सौ।

नहपान—हम लोगों को हाथियो की आवश्यकता नहीं है। कपिशा, कम्बोज, वाल्हीक और सौवीर के घोड़ो का सामाना हाथी नहीं कर सकते कुछ रथ हैं ?

कालकाचार्य—हां, दो सहस्र।

कुजुल—चिन्ता नहीं है।

उषवदात—हमारी और महाक्षत्रप कुजल की सम्मिलित सेना लग-भग दस लक्ष होगी। मालवगण कितनी सेना हमारा विरोध करने के लिये लायेंगे ?

कालकाचार्य—दस लाख से ऊपर ला सकते है। यौधेय मालवो का साथ देंगे।

कुजुल—क्षत्रपो, मेरी सम्मति है कि चारों दिशाओं में धावा करो। मैं अकेला दस लाख के भिन्न भिन्न यूथ लेकर मुल्तान के उत्तर से चढ़ाई करूँगा। क्षत्रप नहपान और उषवदात और भूमक दक्षिण पूर्व से सुराष्ट्र, लाट और परान्त को दावते हुये। मालवों द्वारा पुष्कर में जो उत्तम भद्र घिरे गये हैं, हम उनको त्राण देंगे। फिर क्षत्रप घटाक मथुरा और पद्मावती

से और उत्तमभद्र लोग नलपुर के नीचे विन्ध्यप्रदेश के जन पदों और विदिशा के नागों को चुनौती देते हुये।

तन्वी—सांपों से लड़ाई होगी क्या पिता जी?

भूमक—नहीं बेटी, अभी बतलाया था न? मनुष्य होते हुये भी वे मूर्ख अपने को नाग कहते हैं।

तन्वी—हां, हां. मै भूल गई थी। तो गुदना गुदवा दीजिये संमकिरत में उसके जादू से जीत हो जायगी।

भूमक—अच्छा, अच्छा. थोड़ा ठहर।

नहपान—मुझको यह सम्मति रुचती है।

उषवदात—ठीक है।

घटाक—स्वीकार है।

घटाक—मुझको भी।

कालकाचार्य—उत्तमभद्रो को भी इसमें सुविधा होगी। मैं जाकर उनको सचेत करता हूं। वर्षा ऋतु के पहले उत्तमभद्र नलपुर के बड़े भारी गढ को अपने अधिकार मे कर लेंगे। कालञ्जर एक दूसरा बडा भारी गढ़ है। उत्तम भद्र उसको भी ले लेंगे। और...

कुजुल—देखिए आचार्य जी, आप बडे महात्मा है सही, परन्तु युद्ध के मर्म को नहीं जानते। या तो उत्तमभद्र नलपुर पर ध्यान को स्थिर करें या कालञ्जर पर। यदि उत्तमभद्र कालञ्जर पर आक्रमण करे तो मथुरा के क्षत्रप नलपुर पर झपट लगा देंगे।

कालकाचार्य—सन्यास लेने के पूर्व मैने सैन्य-संचालन किया है, परन्तु जाने दीजिये। आप जैसा कहते हैं वैसा ही होगा। पूर्वीय उत्तमभद्रों का ध्येय नलपुर रहेगा।

मथुरा का क्षत्रप—और हमारा महेन्द्रगिरि। वहा से हम कालञ्जर पर आक्रमण करेंगे।

वकुल—वेत्रवती के उस पार कालञ्जर के मार्ग पर हमारी जाति की एक शाखा यामुन नाम की रहती है। उसी के नाम से एक बडा गाव यामुनी है। यामुन लोग आपकी बड़ी सहायता करेंगे।

मथुरा का चत्रप—(मुस्करा कर) हम उसको बढ़ा कर नगर बना देंगे और यामुन शकराष्ट्र उसका नाम रख देंगे।

उषवदात—मालवो का नेता होगा आचार्य, कुछ बतला सकते हैं आप?

कालकाचार्य—वही होगा दुष्ट दुराचारी गर्दभिल्ल।

कुजुल—और कोई?

कालकाचार्य—एक इन्द्रसेन नलपुर जनपद में हैं।

कुजुल—यह कौन है?

कालकाचार्य—वैदिक आर्य है।

नहपान—शैव।

कालकाचार्य—शैव नहीं है, वैष्णव है। एक वर्ग उठ खड़ा हुआ है जो अपने को वैष्णव कहता है। वैष्णवों की कुछ चर्चा अभी हुई थी।

कुजुल—वैष्णव! वैष्णव!! शैव भी नहीं!!! मुल्तान की ओर लड़ने आवे तो मै भी देखूँ उसको।

कालकाचार्य—कह नहीं सकता। परन्तु वह जनपदों को बहुत उत्तेजित करता फिरता है। भिन्न भिन्न गणों के सघ बनाने का प्रयास कर रहा है।

तन्वी—मैं नाचना सीखूंगी।

भूमक—ठहर, ठहर। (*कालक से*) वह क्या कहता फिरता है?

वकुल—शकों, चहरतों और ऋषकों तथा हिगुणों की बहुत निन्दा करता है। आप लोगो को नारी-मुख कहता है, नपुंसक बतलाता है। बौद्धों के विरुद्ध विष के बीज बोता फिर रहा है। उत्तमभद्रों के तो पीछे ही पड़ गया है।

भूमक—नारी-मुख कहता है ! हुं !

कालकाचार्य——हां कहता तो है ।

कुजुल—नपुंसक बतलाता है ! हूं—ऊँ !

(गुर्ज को संभालता है ।)

नहपान—कार्य-प्रणाली स्थिर हो गई, अब कार्य का आरम्भ हो ।

(सब खड़े हो जाते है ।)

सबके सब—हो, कार्य का आरम्भ हो ।

कुजुल—मालवगण का चूरमा कर दो !!

नहपान—विन्ध्यप्रदेश को धूल मे मिला दो !!!

भूमक—आर्यावर्त का कचूमर निकाल दो !!!!

(उत्तेजित होकर सब एक ओर से प्रस्थान । कालकाचार्य और वकुल रुक जाते है । कालकाचार्य और वकुल को रुका हुआ देख कर भूमक और उषवदात लौट पडते है । भूमक के साथ तन्वी भी ।)

उषवदात—आचार्य, ठिठक कैसे गये ?

कालकाचार्य—आ रहा था । यहा से सीधा कहाँ जाना है, इस प्रसङ्ग पर वकुल से परामर्श करना था ।

भूमक—मै यह पूछने को लौट पड़ा कि अब आगे आप कहाँ मिलेंगे ?

कालकाचार्य—आपकी विजय का स्वागत करने के लिये उज्जैन मे ।

भूमक—इसके पहले हमको किसी दूत के द्वारा, उत्तमभद्रों को बढ़ने का और मालवों तथा उनके सहायकों की गति-विधि का समाचार मिलता रहना चाहिये ।

कालकाचार्य—मिलता रहेगा । प्रबन्ध कर लूँगा । भिक्षु और श्रमण घूमते रहते हैं । उनकी यात्रा अबाध रहती है । उन्हीं के द्वारा समाचार भेजता रहूगा । आपकी आरशीकान्त भाषा और खरोष्ठा लिपि में ।

भूमक—ठीक है।

तन्वी—उज्जैन क्या है? कैसा है? कब पहुँचेंगे? क्या वह मयूर नाचता भी होगा?

भूमक—एक साथ इतने प्रश्न? चलो अब।

तन्वी—हूँ—ऊँ।

[सब का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

[स्थान—उज्जैन के राजा भवन से दाईं ओर लगा हुआ उद्यान। राजा भवन का एक भाग दिखलाई पड़ता है और उससे लगे हुये उद्यान का एक अंश दूसरी छोर पर। राजभवन को बाईं ओर जनमार्ग। जनमार्ग से उद्यान नहीं दिखलाई पड़ता है। भवन के ऊपरी खंड में गोख और झरोखे हैं जो जनपथ पर खुलते हैं। उद्यान से भवन के ऊपरी खंड में जाने के लिये भीतर से मार्ग है बायें पार्श्व से जन मार्ग पर जाने आने वाले भवन के उस भाग के नीचे से निकल कर बायें पार्श्व की दिशा से लौट सकते हैं। समय—संध्या। दिन की तपन के उपरांत अब वायु में शीतलता आगई है।]

(सुनन्दा का प्रवेश। पीछे पीछे कुछ सखियां इठलाती हैं।)

सुनन्दा—ये पुष्प इतने सुन्दर हैं कि इनका तोड़ना मैं अपराध समझती हूँ।

एक सखी—तो क्या इनका दूर से ही दर्शन करना है? परन्तु पराग-परिमल तो उनका फैल-फैल कर, बरबस हृदय में बैठ कर, तभी विराम लेगा जब वे तोड़ लिये जायँ।

सुनन्दा—वह उनका गुण है। तोड़ना उनके साथ अत्याचार करना है।

सखी—तब सौन्दर्य को दूर से ही प्रणाम करके सन्तुष्ट रहना चाहिये। स्मरण रक्खूंगी।

सुनन्दा—चल हट, तुझको यही सब सूझता रहता है। कितनी दूर से गरमी में चलकर तो इस उद्यान में आई हूँ। इस पर भी तू व्यङ्ग छोड रही है।

सखी—ये चलीं हम सब। यहीं तक पहुँचाने तो आना ही था। महाराज आने ही होंगे।

(एक वृक्ष के पीछे से गर्दभिल्ल का प्रवेश)

गर्दभिल्ल—किसने कहा महाराज? मालवगण ने मुझको अधिकार तो अनेक दे दिये है, परन्तु अभी मै महाराज नहीं हूँ।

(सखिया एक दूसरे को संकेत करके जाती है)

सुनन्दा—इन दिनों सभा मे क्या होता रहा? कितने समय उपरान्त आज दर्शन कर रही हूँ!

गर्दभिल्ल—शक अनेकों दिशाओं से मालवों पर आक्रमण कर रहे हैं, सो आप जानतीं ही है। मालवों के सोलह विविध जनपदों के गणपतियों और छोटे छोटे गणपकों को, जो यहा बहुत दिनों से एकत्र हैं, भली भांति उनका कर्तव्य समझा दिया है। वे लोग शीघ्र यहा से जाकर अपने ग्रामों के अष्ट-कुलपतियों, कुलपतियों ग्रामिकों और ग्राम-प्रमुखो को युद्ध के लिये सन्नद्ध कर देंगे। इन्ही समस्याओं मे बीता रहा देवी।

सुनन्दा—वाह! यह कार्य तो हरकारों और कुटचारो द्वारा भी कराया जा सकता था महाराज।

गर्दभिल्ल—महाराज कहा आपने देवी! मै इन दिनो के सचित क्षोभ को आपकी एक ही बात में भूल गया। इन गणपतियो और कुलपतियों के परस्पर वैमनस्य, द्वेष और विवाद करने के अभ्यास को देखकर खीझ खीझ उठता था। कभी कभी लगता था इन सबको समाप्त करदू या अपने को समाप्त करलूं।

सुनन्दा—(*आँख तरेर कर*) फिर आपने वही बात कही ! मुझको कसने के लिये आप उसी की पुनरावृत्ति कर रहे हैं ?

गर्दभिल्ल—देवी, क्षमा करना। मेरे अज्ञात मनको आपकी ही मुस्कान मे शान्ति मिलती है। इम लोग कब तक खड़े रहेंगे ? यहा कोई आसन ही नहीं ! आप तो यहा मेरे आने के पहले से खड़ी हैं !! थक गई होंगी।

सुनन्दा—नही तो, अधिक समय नही हुआ। विराजिये। यह सम्पूर्ण उद्यान ही आसन है। अथवा भ्रमण करते रहे तो कैसा ?

गर्दभिल्ल—बहुत अच्छा।

(*दोनों भ्रमण करने लगते है*)

गर्दभिल्ल—आज पुरानी बाते प्रबलता के साथ फिर स्मरण हो आईं। कुछ पुरानी होते हुये भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे आज ही सब कुछ हो गया हो। प्राणों से भी प्यारी देवी आपको पाकर मै महाराज नहीं, महाराजाधिराज और सम्राट तक हो गया हूँ।

सुनन्दा—आप ऐसा सदा ही कहा करते हैं। सच बात यह है कि मै उस समय भ्रम मे थी, नहीं धुन में थी। धुन तो अब भी है। कुछ वर्ष उपरान्त एक घड़ी आवेगी जब हम दोनों सन्यासियों के रूप में बाहर निकल पड़ेंगे और भगवान का सन्देश दूर दूर तक फैलायेंगे।

गर्दभिल्ल—प्यारी देवी एक प्रश्न करूं ? क्या आपके मनमें उसके पूर्व कभी प्रेम की उमङ्ग जगी थी ?

सुनन्दा—(*संकोच के साथ मुस्कराकर*) बतला तो दिया, पहले अनेक बार।

गर्दभिल्ल—तृप्ति नहीं होती। आज एक बार अवश्य सुनूंगा, चाहे कुछ हो जाय।

सुनन्दा—आप बार बार भूल जाते हैं, तो अब फिर से बतलाना व्यर्थ है।

गर्दभिल्ल—एक बार, मैं हाथ जोड़ता हूँ। एक बार और।

सुनन्दा—अरे! फिर वही!! अच्छा, सुनिये।

(*हँसकर चुप रह जती है।*)

गर्दभिल्ल—कहो देवी, कहो।

सुनन्दा—श्राविका होने के पूर्व एकाधबार मेरे मन में उठा था—क्या जीवन मे कभी कोई ऐसा मिलेगा जो मुझको, मुझ अकेली को, हृदय से चाहे? (*सिर नीचा करके कनखियों देखती है*) बस और न पूछिये।

गर्दभिल्ल—कहे जाओ देवी, अमृत का घूँट सा लग रहा है।

सुनन्दा—और क्या मुझको कोई अपना कह कर पुकारेगा?

गर्दभिल्ल—प्राणेश्वरी, प्राणेश्वरी, सहस्रबार प्राणेश्वरी।

(*कन्धे से लगा लेता है*)

सुनन्दा—यह क्या? अरे यह प्रमाद है।

गर्दभिल्ल—प्रमाद नहीं है। अमृत के समुद्र मे डुबकियां लगा रहा हूँ और कमल के राग और पाटल की कोमलता से भेंट कर रहा हूँ। अच्छा यह बतलाओ जब इस भवन में, मै पहले पहल एकांत मे मिला था, तब क्या सोचती थीं?

सुनन्दा—कुछ न पूछिये। उस समय मै भयभीत थी, आत्मघात की धमकी से और भी विचलित हो गई थी, परन्तु आपकी कृपा के बोझ से दबी हुई थी।

गर्दभिल्ल—उसके पूर्व मैंने आपके हृदय में कोई स्थान प्राप्त कर पाया था?

सुनन्दा—यों ही थोडा सा। न जाने क्यों? फिर बढ़ता ही गया।

गर्दभिल्ल—और अब?

सुनन्दा—मैं क्या जानूं। आप जानें।

गर्दभिल्ल—देवी, आप मेरे प्रातःकाल की ऊषा हो। मेरे जीवन के पुष्पों की वर्षा, सुगन्धि का भी परिमल, संगीत की मधुर व्यञ्जना, मदिर समीर की अनन्त मधुरता, गगन तारों के प्रकाश की आभा, मेरे प्राणों की वसन्त-सजीवनी, कोकिला-कूक की अक्षय सरसता, कान्ति की अखण्ड कमनीयता, मंजुल कल्पना की दिव्यता, मणिमुक्ता और इन्द्र धनुष की शोभा, मेरे मन का विस्मय, हृदय का आश्रय, कवि की उपमा से भी चमत्कारपूर्ण—

सुनन्दा—अरे आपने तो झड़ी लगा दी ? थकते ही नहीं !!

गर्दभिल्ल—(*और भी उत्तेजित होकर*) ओ सुमन मञ्जरियों के गौरव की श्री, ओ नव दूर्वा की मुस्कान, शुभ सन्देशों की प्रोज्ज्वलता, अखंड आशाओं की हरियाली मेरी प्राणेश्वरी—

सुनन्दा—(*गर्दभिल्ल के मुँह पर हाथ रखकर*) बस कीजिये प्राणनाथ। मेरे हृदय के हंस, बस कीजिये चलिये थोड़ा विश्राम कर लीजिये।

गर्दभिल्ल—(*सुनन्दा का हाथ अपने एक हाथ में लेकर*) मेरे मन का मयूर इसी फुलवारी में प्रमत्त हो रहा है।

सुनन्दा—(*हाथ छुड़ाकर*) मयूर। मयूर !! उसका नाम मत लीजिये। ओह, कापालिकों का मत्त मयूर !!!

गर्दभिल्ल—(*अविचलित*) देवी, कापालिक ही इस युद्ध में अधिक उत्साह दिखला रहे हैं। उनकी संख्या बहुत है और वे अति प्रबल हैं।

सुनन्दा—उन्होंने उस दिन हम लोगों को जलाकर भस्म कर डाला होता। आप ठीक समय पर न आगये होते, तो हम में से एक के भी प्राण न बचते। दीन वकुल को बांधकर डाल ही दिया था। मेरे भाई आचार्य कालक—ओह ! उनका कुछ पता लगा ? कहां होंगे वे दोनों ! आपने कहा था कि खोज करवायेंगे।

(*गर्दभिल्ल की वासना अस्त हो जाती है*)

गर्दभिल्ल—क्या कहूं देवी?

सुनन्दा—(*व्यग्रता और चिन्ता के साथ*) नाथ बतलाइये, कहा हैं मेरे भाई? आपको पता लग गया है क्यों नहीं शीघ्र बतलाते आप?

गर्दभिल्ल—(*गले के अवरोध को स्वच्छ करके*) देवी पता लग गया है।

सुनन्दा—(*यकायक रुकसर*) कहा हैं वे? कहा हैं वे?

गर्दभिल्ल—देवी, शान्त हो आप। वे शक-पुलिन्दो को उज्जैन के ऊपर चढा कर ला रहे हैं।

सुनन्दा—शक-पुलिन्दों को मेरे भाई! आचार्य कालक!! आप कोई पहेली कह रहे हैं नाथ। किसी ने अपवाद किया है।

गर्दभिल्ल—(*सुस्थिर होकर*) नहीं देवी, पहेली नहीं है। कठोर सत्य। वे शक जो हमारे ऊपर आँधी की भाति बढ़ते चले आ रहे हैं, बौद्ध हैं। कदाचित इसीलिये आचार्य कालक उनके सङ्ग हैं और इसी कारण उन सब के ऊपर दात पीस रहे हैं।

सुनन्दा—बौद्ध तो अहिंसा भक्त होते हैं!

गर्दभिल्ल—परन्तु वे भिन्न प्रकार के बौद्ध है!

सुनन्दा—ओह! अब परस्पर रक्तपात होगा! इसको रोकिये।

गर्दभिल्ल—यदि हम नहीं लड़ते है तो हमारी स्वाधीनता चली जायगी। हम दास हो जायेंगे।

सुनन्दा—स्वाधीनता की रक्षा तो होनी ही चाहिये, परन्तु कापालिकों को संग मत लीजिये।

गर्दभिल्ल—मैं कापालिकों से घृणा करता हूँ, परन्तु क्या करू परिस्थिति ने विवशकर दिया है। कापालिकों को भी सन्देह है कि मैं उनका उचित नेतृत्व नहीं कर सकूँगा। परन्तु अधिकाश मालवगण मेरी पीठ पर हैं, इसलिये भय नहीं।

सुनन्दा—आप कहा करते हैं कि नलपुर का इन्द्रसेन वैष्णव प्रबल है और वह आपका मित्र है। उसको सम्वाद भेज दीजिये न।

गर्दभिल्ल—देवी, नलपुरके ऊपर उत्तमभद्रों ने आक्रमण कर दिया है। इन्द्रसेन वहां फंस गया है। यहाँ नहीं आ सकता।

सुनन्दा—भद्रावती के उत्तमभद्रों ने!

गर्दभिल्ल—हां देवी। उन्हीं लोगों ने नलपुर पर आक्रमण किया है। क्या किया जाय, यह युग ही ऐसा है।

सुनन्दा—युग! राजन्य, नलपुर के कच्छप नीच हैं। दस्यु हैं। उन्होंने एक बार मेरे भाई को लूटा था और उत्तमभद्रों के गाँवों मे आग लगाई थी। उत्तमभद्रों ने नलपुर पर आक्रमण करने में कुछ बुरा नहीं किया।

गर्दभिल्ल—मै भी मन ही मन यही कहता हूं, परन्तु इन्द्रसेन कच्छप नहीं है। कच्छप तो एक वन्य जाति है जो सिन्धु नदी की उपत्यकाओं और वन-कन्दराओं मे रहती है।

सुनन्दा—और इन्द्रसेन तथा उसके जनपद का आश्रय पाकर सब दिशाओं में उत्तमभद्रों का संहार करती रहती है! छिः। राजन्य, नलपुर का पक्ष आप मत ग्रहण करिये।

गर्दभिल्ल—ये क्या, मालवों के अन्तर्गत जो बहुत से जनपद हैं वे सब परस्पर लड़ा भिड़ा करते हैं। मुझको उज्जैन से ही अवकाश नहीं, नलपुर की सहायता कर ही नहीं सकता।

सुनन्दा—मेरे भाई और पिता दोनों युद्ध में बीध गये हैं, और उनको यह ज्ञात है कि मै कहाँ हूँ और क्या हूँ। आचार्य कालक यहां आयें तो मुझको देखकर क्या कहेंगे।

गर्दभिल्ल—कुछ नहीं कह सकते। आपके साथ मेरा विवाह हुआ है। आप मेरी रानी हैं। वे सुनकर प्रसन्न होगे। सभव है कि इस समाचार प्राप्त होने पर वे शकों के आक्रमण का निवारण कर दे, और फिर हम लोग नलपुर की ओर से ध्यान उच्चाटन करके पूर्वीय मालवों, आरकों तथा उत्तमभद्रो के बीच में चिर सन्धि कराने में सफल हो जायें।

सुनन्दा—आचार्य कहेंगे श्राविका होकर मैं विवाह के बन्धन में कैसे पड़ गई!

गर्दभिल्ल—वे सन्यासी होकर युद्ध के जंजाल में क्यों पड़ गये?

सुनन्दा—वे कापालिकों को दण्ड देना चाहते होंगे।

गर्दभिल्ल—और हम लोग अपने हृदयों की व्यथा को सुन्दर शान्ति देना चाहते थे।

सुनन्दा—अब जो हो, परन्तु मेरे वृद्ध पिता और आचार्य कालक का निरन्तर ध्यान रखिये, तब तो आपका प्रेम सच्चा अन्यथा झूठा और बनावटी।

(भवन मे घन्टा बजता है और डंके पर चोट पर चोट पड़ती है भवन के बाहर लगी हुई सडक पर कोलाहल होता है।)

गर्दभिल्ल—*(क्षुब्ध होकर)* कण्ठ तक प्राण आ गया है इन झझटों के कारण। सोचा था देवी के प्रेमका मधुर मदिरा पीकर विश्रान्ति पाऊगा परन्तु जीवन मानो काटों से पूर दिया गया। देवी, मै जाता हू, देखूँ इतनी देर मे कौन सी नई बात हो गई। फिर दर्शन करूँगा।

(गर्दभिल्ल भीतरी मार्ग से भवन के ऊपरी खण्ड का गोख पर जा पहुँचता है और सुनन्दा उद्यान के एक अदृष्ट भाग मे चली जाती है। जाते समय वे एक दूसरे की ओर नही देखते। मार्ग मे कापालिक, बौद्ध, जैन, इत्यादि जनता की सम्मिलित भीड़ कोलाहल कर रही है।)

गर्दभिल्ल—क्या है, नागरो?

एक कापालिक—अभी अभी समाचार आया है कि शक लोग हमारे जनपद मे घुस आये हैं। मालव जनपदों के गणपति और गणपक अभी अपने डेरो में वाद-विवाद ही कर रहे है। इनको यहाँ से शीघ्र निकालिये। हम लोग अपने मत्त मयूर को उड़ाते हुये अभी इन दुष्टों पर पिले पड़ते हैं।

दूसरा नागरिक—वे लोग गॉव के गॉव जलाते हुये चले आ रहे हैं। स्त्री, बालक, गो, ब्राह्मण सबका विध्वंस करते हुये बढ रहे हैं। वैदिक मन्दिरो को तोड़ फोडकर धूल मे मिलाते चले आ रहे है।

एक कापालिक—बौद्ध मन्दिरों, मठो और विहारो को बचाते चले आ रहे है!

एक बौद्ध—वे विदेशी है। अवर्ण ह। किसी को नहीं छोड़ते।

एक नागरिक—झूठ, नितान्त झूठ। बौद्धों को बचाते आते है। मुझको पता है!

गर्दभिल्ल—शान्त नागरो, शान्त।

दूसरा नागरिक—सेना को चलाइये। तब शान्ति होगी। हम लोग युद्ध के लिये सन्नद्ध है।

एक नागरिक—सुराष्ट्र लाट और परान्त से भाग भागकर कुछ लोग आ रहे है। वे लोग और भी बड़ी बड़ी भयकर बाते करते हैं। शको के अत्याचारों से मेदिनी काप उठी है।

गर्दभिल्ल—व्यथित न हो सज्जनो। अभी सब प्रबन्ध होता है। मैं मालवों की सेना को लेकर शीघ्र आगे आता हूँ तथा जनपदों के गणपतियों को यहाँ से विदा करता हूँ। आप लोग शान्ति पूर्वक अपना अपना काम देखे।

गर्दभिल्ल चला जाता है। जनता की भीड भी बिखर कर, जाती है। दो कापालिक जाते जाते धीरे धीरे परस्पर वर्ता-लाप करते है।)

एक—इस राजा ने जब से उस कुमारी के साथ विवाह किया, तब से यह राजा रखने योग्य ही नहीं रहा।

दूसरा—इस समय कुछ नहीं किया जा सकता। युद्ध काल है, धैर्य से काम लेना पड़ेगा।

पहला—परन्तु है गर्दभिल्ल नितान्त निकम्मा।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[स्थान— नासिक के पास युद्ध क्षेत्र। इधर उधर पहाड़ियां नाले और वृक्ष समूह। समय दिन। क्षहरात शकों की लम्बी चौड़ी छावनी। भूमक, नहपाव उषवदात इत्यादि शक नायकों के निवेश भूमक, नहपान और उषवदात का सेना नायकों के सजीले वेश मे, और कालकाचार्य तथा वकुल का श्रावक वेश मे प्रवेश।]

उषवदात—मालव तो हमारी हुंकारमात्र से भाग गये। ह! ह! ह युद्ध का तो योग ही नहीं आया। कापालिकों की गर्दनें कतरने के लिये हमारे सिपाहियो के हाथ सहलाते ही रह गये! सिंगा, भेरी और रम्मट का शब्द कुछ दूर से सुनने को मिल गया, परन्तु बजाने वाले न जाने कहा छिप रहे और कब कपूर हो गये। त्रिशूल, खड्ग और धनुष बाणों की डींगे तो बहुत सुनी थीं, परन्तु करतब कुछ न देख पाया! मन की मन में रह गई!!

कालकाचार्य—कदाचित ये सब उज्जैन में एकत्रित हो रहे होंगे। वहा युद्ध होगा।

उषवदात—आचार्य जी, वे अब कहीं नहीं ठहरेंगे। उत्तमभद्रों को पुष्कर में निस्तार मिल गया। वे वर्षा के कारण झंझट में फँस गये थे उनके संकट का मोचन हो गया। उस ओर से उज्जैन पर उनके चढ़ दौड़ने की सूचना पाकर अब पूरी उज्जैन नगरी के पैर उखड़ जायेंगे।

भूमक—खेद है कि मैं उस अवसर पर न रह सकूंगा। सुना है कि सिन्धुसौवीर के हमारे छोटे छोटे अधीन क्षत्रपों ने द्रोह का झंडा खड़ा कर दिया है। इन लोगों को मालवों या यौधेयो ने भड़काया होगा (*दांत पीसकर*) इन सबको पीस कर यदि मैंने चूर्ण न कर दिया तो मेरा नाम भूमक नहीं। मैं गूढ़पुरुषों के समाचार की बाट जोह रहा हूँ।

कालकाचार्य—नलपुर में इन्द्रसेन वैष्णव ने उत्तमभद्रो को परास्त कर दिया है, यह बात मन को कसक रही है।

भूमक—मथुरा और पद्मावती के क्षत्रपों की मूर्खता उसका कारण है। आचार्य, हम शीघ्र प्रतिशोध करेंगे।

नहपान—देखिये तो, हम थोड़े से ही समय में इन्द्रसेन के जनपद की क्या दशा किये देते हैं। आग और तलवार से युगों तक हू हू और हाहाकार निकलते रहेंगे।

(एक शक का सैनिक वेश में प्रवेश)

सैनिक—(*प्रणाम करने के उपरान्त*) स्वामी, सिन्धुसौवीर के क्षत्रपो ने अपने को स्वाधीन कर लिया है। उन्होंने अपने अपने नाम की मुद्रायें ढाली हैं। कपिशा के यवन महाराज हिमाद्रि का अँकन एक ओर है और अपना अपना दूसरी ओर!

भूमक—(*होठ काटकर*) कपिशा का हिमाद्रि! जिसका सम्पर्क मैने अपनी मुद्रा पर से अतिकाल हुआ जब मिटा दिया था। यह साहस इन दुष्ट दम्भियों का!! नहपान, मै आपसे विदा लूंगा इसी समय उत्तर पश्चिम की दिशा में कूच करूंगा।

नहपान—अभी!

भूमक—हा अभी। महाक्षत्रप। हम शक इन मालवों की भांति दीर्घ सूत्री और शिथिल थोड़े ही हैं। आपको चिन्ता ही क्या है? उत्तमभद्र स्वाधीन हो गये हैं। मथुरा और पद्मावती के शकों के समूह के समूह बढ़ते चले आवेंगे। उत्तर में पञ्चनद का केसरी रणवाकुरा महारथी कुजुल असख्य सेना लेकर बढ़ रहा होगा। तक्षशिला के लिअक और पतिक कुजुल के साथ इस प्रवाह पर आरूढ़ होकर चले आ रहे होंगे। अब तक ये सब मालवों को आकर घेरें, तब तक मैं सिन्धुसौवीर तथा कपिशा को और अटक पड़ी तो ऐरायण को भी विध्वँस कर लौट पड़ूंगा। सैनिक जाओ, मेरे दल को प्रस्थान करने की सूचना दो।

(सैनिक का प्रस्थान)

(तन्त्री का प्रवेश। सुमन मालायें डाले हुये है।)

तन्वी—ऐसा मनोहर देश छोड़ कर आप कहा जा रहे हैं, पिता जी उस ओर रेतीले मैदान हैं, पेड़ कम और नंगे पहाड़ अधिक। मै नाचना गाना यहा बहुत अच्छा सीख रही हूँ। संस्कृत और प्राकृत का भी अध्ययन कर रही हूँ। सब का अभ्यास छूट जायगा।

भूमक—(*मृदुल पडकर*) यही एक समस्या है।

उषवदात—इसको मेरे पास छोड़ दोजिये। आप कहा लिये लिये फिरेंगे ?

कालकाचार्य—हम लोग इसकी देखभाल भली भाति कर सकते हैं मैं इसको पढाने के लिये और अधिक समय दूंगा अति प्रखर बुद्धि की है कन्या।

तन्वी--(*हँसकर*) परन्तु मै भिक्षुणी या श्राविका नहीं बनूंगी। क्या भिक्षुणी नाच गा सकती है।

कालकाचार्य—नृत्य गान तो नहीं कर सकती। निशिद्ध है। परन्तु उनका जीवन बहुत सुखी होता है। पर्वत शिखर की ऊँचाई स्वयं एक सौन्दर्य है। ऊषा का पीतपट अपना निज का एक आकर्षण रखता है, तप में स्वर्ण से अधिक अपना ही चोखापन है। भिक्षुणी तथा श्राविका की त्याग द्वारा अर्जित अपनी विशालता, आत्मिक शाति की महानता, दुख पीड़ा और मोह पर हँसते हुये उतराते रहने की अनुभूति, नृत्य और गान के क्षणिक रस को उपेक्षा और ग्लानि की दृष्टि से देखते हैं ! और—

(*अनुसुनी करके भूमक उषवदात को अलग ले जाता है*)

भूमक—मै तन्वी को यहीं छोड़ जाने का पहले भी निश्चय कर चुका था। बौद्ध तो यह है ही, परन्तु भिक्षुणी न बनने पावे। दूसरी बात—क्या महाक्षत्रप नहपान को मेरे सङ्ग कर सकोगे !

उषवदात—दोनो आज्ञाओं का पालन संभव है, महाक्षत्रप। वास्तव में है भी हमारे पास आवश्यकता से अधिक सेना। ले जाइये इसके एक बड़े अङ्ग को अपने साथ। महाक्षत्रप से कहलें, आइये।

(*दोनों नहपान के पास जाते है*)

भूमक—आपको मेरी सहायता के लिये चलना होगा।

नहपान—मुझको कोई आपत्ति नहीं है। यहा के जनपदों को ठिकाने लगाने के लिये अकेला उषवदात ही पर्याप्त है। क्या कहते हो कालक जी?

कालकाचार्य—यौधेयगण अपने को सदा से अजेय समझता आया है। उसको यहा के लोग जयमन्त्रधारी कहते हैं।

उषवदात—आगे न समझ सकेगा।

कालकाचार्य—तो ठीक है, क्षत्रप।

तन्वी—तो मै यहीं रहूगी? पिता जी आप कब तक लौटेंगे?

भूमक—अनिश्चित है बेटी, परन्तु अविलम्ब आऊँगा। सिन्धुसौवीर के उन छोटे छोटे क्षत्रपों ने मुद्रा से मेरा नाम हटा कर हिमाद्रि का नाम अङ्कित करा दिया है! हुँ! देखता हू। मेरे राज्य को मिटाना चाहते हैं ये अभागे!! इनको ठिकाने लगाकर लौटूंगा।

(तन्वी को गोद मे लेकर उसके सिर पर हाथ फेरता है)

भूमक—*(तन्वी को गोद से उतारकर)* यह सुखपूर्वक रहे, बस और इसके अतिरिक्त मेरी कोई इच्छा नहीं।

(तन्वी उदास हो जाती है। भूमक नहपान को लेकर जाता है। नेपथ्य में भूमक के डंकों पर चोट पड़ती है। वह अपनी, तथा नहपान की कुछ सेना सहित प्रस्थान करता है प्रस्थान का रब क्रमशः विलीन हो जाता है)

उषवदात—बेटी तुम उदास क्यो हो? तुमको किसी प्रकार का भी दुख न होने पायगा। इच्छानुसार नाचना, गाना और पढ़ना।

तन्वी—मै कितने समय में पढ़ लिख जाऊँगी?

कालकाचार्य—एक दो वर्ष में। मेरे अध्यापन की प्रणाली ऐसी है कि थोड़े ही समय मे मेरे विद्यापीठ का मूर्ख विद्यार्थी भी पण्डित हो जाता था *(यकायक अपनी बहिन सुनन्दा के बाल्य-काल का स्मरण हो आता है और वह खिन्न हो जाता है—।—)* *(धीरे से)* सुनन्दा!

तन्वी—मुझसे कहते थे उदास मत हो और आप स्वयं क्यों उदास हो गये ?

कालकाचार्य—यों ही बेटी। तुम्हारी ही जैसी मेरी बहिन भी थी। उसको पढ़ाया था। स्मरण हो आया!

तन्वी—कहा हैं वे, गुरूजी कहा हैं वे ?

(कालकाचार्य की आंख जल उठती है।)

कालकाचार्य—(*बहुत धीरे*) कह नही सकता। मालवों ने उसको बन्दी कर लिया था। ज्ञात नहीं अब कहा है। उज्जैन चल कर खोज करूँगा।

उषवदात—अवश्य, आचार्य, अवश्य।

(उपवदात के सहायक सेनापति का प्रवेश।)

स० सेनापति—शाहु उषवदात की जय हो। समाचार आया है कि उज्जैन में शत्रुओं का एक विशाल दल एकत्र हो रहा है।

उषवदात—कोई नई बात नहीं।

स० सेनापति—मुल्तान के उत्तर में यौधेयों ने कुजुल, लियक और पतिक की सेनाओं को रोक लिया है। पद्मावती के दल, पूर्व और दक्षिण मालव की दिशा मे कमान के आकार में बढ़ते चले आ रहे हैं और उनके साथ भद्रों की भी सेना है।

उषवदात—अब हम लोगों को उज्जैन पर विजली के वेग की भाति टूट पड़ना चाहिये। इधर के विजित प्रदेशों का प्रबन्ध तुम्हारे हाथ में रहेगा। मै चाहता हूँ कि यहाँ के प्रचलित आचार के अनुसार शासन प्रबन्ध किया जाय।

स० सेनापति—जो आज्ञा, मुझको इन प्रदेशों की थोड़ी सी जानकारी है भी।

कालकाचार्य—मैं कुछ कहूँ महाक्षत्रप ?

उषवदात—अवश्य आचार्य।

कालकाचार्य—इन प्रदेशों में के जनपदो में जो प्रभावशाली गणपति हैं उनको समाप्त करिये और छोटे छोटे प्रभावहीन गणपकों और ग्राम प्रमुखों को अपनाइये ये प्रभावशाली गणपति ही सम्पूर्ण विरोध की जड़ हैं और इसमें से अधिकाश शैव हैं।

उषवदात—जनपदो के जो लोग अपने को बौद्ध कहेंगे और शक घोषित कर देंगे वे ही त्राण पा सकेंगे। गणपतियों और गणपको का, सबका विनाश कर दूंगा। मुझको आश्चर्य है कि यहा भूमि का स्वामी राजा नहीं है बरन् जिसके हल के नीचे हो वह है! हमारे यहा समग्र भूमि और सम्पूर्ण देश का स्वामी शाह या क्षत्रप होता है। इस देश में भी मै यही नियम चलाऊँगा, तब यहा की जनता की बुद्धि टिकाने आयगी।

कालकाचार्य—जनता बिलबिला उठेगी भूमि के अपहरण से।

उषवदात—मै किसी की भूमि छीनूंगा नहीं, परन्तु राज्य के हित के लिये छीनने की सुविधा नियम में रक्खूँगा। हमारे नियमो के विरुद्ध जो कोई भी आचरण करे उसको वध और हाथ पाव काटने, आँखे निकलवाने इत्यादि के दण्ड के साथ साथ भूमि छीने जाने का भी दण्ड दिया जायगा।

कालकाचार्य—फिर इस अपहृत भूमि का क्या होगा महाक्षत्रप?

उषवदात—यह छीनी हुई भूमि आज्ञाकारियों को देदी जाया करेगी। प्रत्येक भूमि खण्ड के भाग का सग्रह किया जायगा जिसमे जनता को स्मरण रहे कि उसका सम्बन्ध ग्राम-मुख्यों से बहुत कम है और शाह या क्षत्रप से बहुत अधिक। ग्राम-मुख्य भूमिकर इत्यादि भोगों का संग्रह करके हमारे भोगिक को देगा और वह उसको हमारे कोष में प्रविष्ट करता रहेगा

कालकाचार्य—शाह—

उषवदात—परन्तु मठ, बिहार, सघ इत्यादि इस व्यवहार से मुक्त रहेगे। मैं एक दान उनको अभी करता हूँ। यहीं की एक गुहा त्रिरश्मि पर्वत की तीसरी गुहा नासिक के सघ को लगाता हूँ। कन्दरा की शिला पर लेख उत्कीर्ण किया जायगा।

तन्वी—उसके साथ अपना विजय का लेख नहीं खुदवायेंगे क्या ?

उषवदात—हां, हा, अवश्य। क्यो आचार्य ?

कालकाचार्य—आप दानी हैं। उत्कीर्ण कराइये अपनी यशवार्ता को।

तन्वी—मै अपनी एक बॉह पर गुरूजी का नाम गुदवाऊँगी।

कालकाचार्य—*(प्रसन्न होकर)* उससे तुमको क्या प्राप्त होगा बेटी।

तन्वी—हर्ष मिलेगा। देखिये, कन्धे के नीचे एक ओर मैने गुदवा लिया है शाहानुशाही महाक्षत्रप भूमक की पुत्री, दूसरी बाह पर गुदवाऊँगी आचार्य कालक की शिष्या। ह! ह! ह! ह! कितना अच्छा रहेगा। ह! ह! ह!

उषवदात—ठीक कहती है बेटी। कितनी चतुर है आचार्य यह!

कालकाचार्य—*(मुस्कराकर)* अत्यधिक। मुझको इस की प्रखर बुद्धि पर विस्मय होता है। *(फिर यकायक खिन्न होजाता है। धीरे से)* सुनन्दा।

तन्वी—*(कालकाचार्य का हाथ पकड़ कर)* हा, हा,। बड़े बड़े काम करूँगी गुरूजी। मै उज्जैन चलकर अपनी बहिन का भी पता लगाऊंगी। मै लड़ाइयां भी लड़ूंगी—जब सब हथियार चलाना सीख लूंगी तब।

(कालकाचार्य की आंख जल उठती है, एक ओर से मुँह फेरकर दांत पीस लेता है।)

उषवदात—*(सहायक सेनापति से)* जैसा मैंने कहा है उसके अनुसार इन प्रदेशो का शासन करना।

(सहायक सेनापति जाता है)

कालकाचार्य—*(जैसे समाधि खोली है)* बेटी, तुम युद्धविद्या और शस्त्र-सचालन अवश्य सीखना। बर्बरता के समक्ष साधुता स्त्री की रक्षा नहीं कर पाती। शक्ति अस्त्र है, शक्ति शस्त्र है और वही शिरस्त्राण तथा

ढाल है। स्त्री का वह सर्वस्व है। शक्ति जब माध्वी हो जाती है तब उसको सूर्य की प्रखर ज्योति प्राप्ति हो जाती है। उसी से अन्तराल की ज्योति जाग्रत होती है। फिर उस पर किसी भी क्रूर अन्धकार की दृष्टि स्थिर नहीं हो सकती। तुम इस क्रम का अभ्यास करना।। कुछ शिक्षा निश्चित निर्धारों से प्राप्त होती है, और कुछ भ्रम के विकल्पों से भी—

तन्वी—मैं समझी नहीं।

उपवदात—यह सब मैं अवगत नहीं कर सका।

(नेपथ्य में गायन वादन होता है।)

तन्वी—*(प्रसन्न होकर)* मैं भी गाऊंगी। सुन्दर गीत गाऊंगी। नाचूंगी भी। *(भाग जाती है।)*

उपवदात—आचार्य, कच्चे फलों को पकाने के प्रयास मे, कृमिकीटि लग जाते हैं। आप तन्वी को शास्त्रों की गहनता में कच्चा न पकाकर, अभी जीवन के सरस क्रम मे चलने दीजिये। हम शकों की वही परिपाटी है। आइये। आपसे कुछ बात करूँगा।

कालकाचार्य—*(धीमे स्वर में)* आ—आ अच्छा।

(दोनों जाते हैं।)

चौथा दृश्य

(स्थान—उज्जैन का बडा जनमार्ग। अभिजात और मध्यम श्रेणी की जनता घबराहट में इधर उधर भाग रही है। जिससे जितना बन सकता है अपनी सामग्री लेकर पलायन कर रहा है। केवल निम्न श्रेणी के और दरिद्रजन, भाग दौड़ नहीं कर रहे हैं। भिक्षु इत्यादि स्थिर हैं। समय—दिन।)

एक नागरिक—*(भागते हुये)* सर्वनाश हो इन कापालिकों का। इन्होंने हमको मिटवा दिया।

दूसरा—*(भागते हुये)* अरे, इस कालक ने शकों को बुलाया, कापालिकों ने नहीं।

(एक श्रमजीवी का प्रवेश)

श्रमजीवी—हम श्रमजीवी कहा जायं ? हमारे लिये तो कहीं भी कोई आसरा नहीं। यहीं कहीं खपना पड़ेगा। *(जाता है)*

(दो बौद्ध भिक्षुक आते है)

एक—यह सब व्यर्थ ही भाग दौड़ मचा रहे हैं।

दूसरा—संघ की शरण में आ जावें एक बाल भी बाका न होगा।

(दोनों शांतिपूर्वक जाते है)

(कुछ कापालिकों का प्रवेश। सब सैनिक वेश में है। आगे पुरन्दर है वह चमकता हुआ कौशेय झंडा लिये हुये हे। भगवा भूमि पर रंग-बिरंगा मयूर। कापालिकों के मुण्ड माला है, कुछ मुर्झा गये है। पुरंदर के गले की माला का सूत्र टूट गया है और टूटी हुई माल गले के पास कपड़े मे अटक गई है।)

पुरन्दर—नगर निवासियो ! बन्धुओ !! और देवियो !!! धैर्य मत छोड़ो। हम लोग तुम्हारी रक्षा के लिये शकों का मर्दन करने हेतु बढ रहे हैं। हथियार सभालो। शत्रु का सामना करो। भगदड़ मत मचाओ। ठहरो ! ढाढ़स रखो। पूर्व पुरुषों के नाम पर कलंक न लगाओ।

(भागने वाले नही सुनते। वे भागते जाते है।)

एक कापालिक—गुरुदेव, ये भगेड़ू वे लोग हैं जो दिन रात यह कहते नहीं अघाते थे कि बलिदान मत करो, हिंसा मत करो, मठ बनाओ और भीख मागो।

पुरन्दर—अब इन बातों के कहने से लाभ नहीं। *(भागते हुये लोगों से)* सिर पर पैर रखकर भागने से खड्ग और धनुषबाण हाथ में लेकर लड़ते हुये मरना कहीं अधिक अच्छा है। *(लोग नही मानते)* शकर के वीरो, अपनी मयूर पताका को देखो। वह शकों को चबा डालने और निगल जाने के लिये उन्मत्त है। चलो, बढ़ो। हम संख्या मे थोडे

होते हुये भी शंकर के त्रिशूल और मयूर का मान रक्खेंगे। शत्रु आर्य जन की पीठ नहीं देख पाता, उसके वक्ष को देखता है। जैसे अङ्गारे में आंच, खड्ग में धार, शूल में तीक्ष्ण अनी, सूर्य रश्मि में तपन, जलपात में शिला को चूर करने की शक्ति और बिजली मे क्रोध होती है, उसी प्रकार आर्यजन में वीरता। बढ़ो! बढ़ो!!

(नेपथ्य मे)—'राजन्य, घोड़ों पर से उतर पड़िये। जनता का एक भाग रुष्ट होकर आपको मारने के लिये आ रहा है। उतरिये शीघ्र। देवी, आप भी उतरिये।' *(कापालिकों का प्रस्थान)*

(नेपथ्य मे ही)—'कहाँ गया गर्दभिल्ल? कहाँ गया वह आलसी विलासी? अभी घोड़े पर चढ़ा हुआ कहीं लुप्त हो गया। उसी की असावधानी से आज उज्जैन की दुर्गति हो रही है।'

(दूरी पर शकों का धोंसा और नगाड़ा बजता है।)

(नेपथ्य में)—'भागो, भागो, शक आ गये।'

(दूसरी ओर से गर्दभिल्ल और सुनन्दा का दो अङ्गरक्षकों सहित प्रवेश। गर्दभिल्ल घबराया हुआ है। सुनन्दा दृढ़ और निश्चित है। अङ्गरक्षक आगे बढ़ जाते है। भीड अपनी चिंता मे व्यस्त आती और भागती जाती है।)

सुनन्दा—नाथ, विव्हल मत होइये। अभी अवसर है। चलिये, वन की ओर निकल चलें।

गर्दभिल्ल—वन की ओर? हा, वन की ओर। वहां से विदिशा का मार्ग पकड़ना है। ऐसे समय स्त्रियो का साथ बड़ा दुःखदायक होता है। बड़ी रानी और राजकुमार को दूर गाँव में पहले ही भेजदिया है सो अच्छा रहा। तुमको भी पहले ही गॉव में कहीं भेज दिया होता तो—ठीक रहता।

सुनन्दा—कितने दिन से कह रही थी कि निकल चलिये, परन्तु आप समय पर निश्चय करना तो जानते ही नहीं हैं।

गर्दभिल्ल—मुझको अपशब्दों से घायल मत करो देवी। मैं विपत्ति में हूँ।

सुनन्दा—मै बहुत सुख में हुँ न? जिस समय बड़ी रानी को गॉव भेजा था, उसी समय मुझको भी भेज देते। *(उसकी आखो मे आसू झलझला आते है।)*

गर्दभिल्ल—मैं जानता हू, स्त्री उतनी मीठी नहीं होती जितनी तीखी होती है। चलिये, चलिये।

सुनन्दा—एक दिन वह उद्यान वाला था! *(गर्दभिल्ल को दुखी देखकर)* परन्तु नहीं—।

(भागती हुई जनता के कुछ लोग इन दोनो को घेर लेते है। 'मारो मारो यही है हमारा द्रोही राजा'। शको का धोंसा और नगाड़ा निकट बजता हुआ सुनाई पड़ता है। 'वह मारा कापालिकों को' 'वह मार भगाया ध्वजो को।' की पुकार नेपथ्य मे होती है। गर्दभिल्ल भयभीत और विचलित हो जाता है।)

सुनन्दा—*(आगे आकर)* नागरो। मारना है तो मुझको मारो। राजा का कोई दोष नहीं। मैंने ही इनको युद्ध में जाने से रोका। मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ। मुझको मारो। *(नेपथ्य में भागो, भागो का शब्द होता है। गर्दभिल्ल के अंगरक्षक लौट पडते हैं।)*

एक अंगरक्षक—*(खड्ग खींचकर)* क्यों रे नीचो! लुटेरो!!

सुनन्दा—अपने ही जन हैं मत मारो। चलो, चलो। नागरिको, भागो।'

(वे नागरिक भाग जाते है।)

दूसरा अंगरक्षक—राजन्य, देवी, अब विलम्ब करने से हम सब पकडे और कतर डाले जायेंगे। चलिये।

(प्रस्थान)

(दूसरी ओर से घोसा और नगाडो इत्यादि बाजो की ध्वनिया के साथ विजयी शकों का प्रवेश । सबसे आगे उषवदात । बीच मे कालकाचार्य और वकुल ।)

उषवदात—वीर शको, उज्जैन निवासी बचकर भागने न पावें। वन्दी करलो। कापालिकों और शैवों को जहाँ पाओ मार डालो। लूटो। नगर में आग लगा दो। एक एक शक को दस दस दास और दासियाँ पुरस्कार में मिलेंगी चाहे उनको अपने पास यहा रखना, चाहे अपने जन्म देश मे भेज देना। उज्जैन तुम्हारा और उज्जैन का सम्पूर्ण जन, धन तुम्हारा। केवल राज भवन में आग मत लगाना, क्योंकि उसमें अमूल्य वस्त्र और आभूषण होंगे। राजा को वन्दी कर लेना और सुनन्दा नाम की राजकन्या को आदर पूर्वक सुरक्षित रखना। वे राजभवन के बन्दीगृह मे मिलेंगी। समझ में आ गया मेरा आदेश ?

शकसेना—आ गया शाहानुशाह, आ गया महाराज, महाक्षत्रप।

उषवदात—शको की जय। सब शकों की जय।

(वे सब जाते है। कालकाचार्य का सिर नीचा है।)

कालकाचार्य—*(रुद्ध स्वर मे)* वकुल ! वकुल !! मुझको कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा है और न कुछ सुनाई ही पड़ रहा है। व्यग्रता के साथ देखो देखो, आतुरता के साथ चलो। सुनन्दा की रक्षा करो, क्यों कि शक—शक।

वकुल—चलिये। चिन्ता मत करिये। शक अपने ही हैं।

(वे दोनों जाते है।)

पांचवां दृश्य

[स्थान—उज्जैन का राजभवन ऊँचे आसन पर स्वर्ण और रत्नों से जड़ी चौकी। उषवदात सैनिक वेष में मुकुट लगाये बैठा हुआ। नीचे दोनों ओर अर्द्ध वृत्ताकार में उसके मन्त्री और दलपति भड़कीले वस्त्रों में चौकियों पर बैठे हैं। राज भवन के द्वारों पर द्वारपाल और

चोबदार है। उषवदात के दोनों पार्श्वों में शक जाति की चमर, छत्र व्यंजन और ताम्बूल वाहिकाएं। उषवदात के ऊपर चांदी सोने का चदोबा और चंदोबे के घेरे पर रेशम की गुत्थियो मे मोती की झालरें। धूपदानियो मे सुगन्धित द्रव्य जल रहे है। समय दो पहर के उपरान्त।)

उषवदात—सारी भूमि के प्रत्ययों का पदावर्त हो गया और सब कर बिना किसी कृपालुता के लगा दिये महामन्त्री?

महामन्त्री—हा शाहानुशाह। पद्रको को भी नहीं छोड़ा गया। उद्राग, उपरिकर, धान्य, हिरण्य इत्यादि सम्पूर्ण कर लगा दिये गये हैं। खातों में सब लिख लिया गया है। अक्षपटलिकों, कर्णियों और प्रमुखों को कठोर आदेश दे दिया गया है कि यदि अल्पाश भी आलस्य या उपेक्षा की तो खाल खींच कर भुस भर दिया जायागा। करसंग्रह बहुत कुछ हो चुका है। आदेय बहुत कम है। दडविधान पूरी दृढ़ता के साथ व्यवहार मे लाया जा रहा है।

उषवदात—बाल्हीक से, दासियो के पहुँच जाने की सूचना आगई? सब पहुँच गये?

महामन्त्री—उज्जैन के चौथाई जन दास बना कर भेजे गये थे। उनमे से कुछ स्त्रिया और बच्चे मार्ग मे मर गये। कुछ बीमार हो गये थे, उनका ले जाना दुस्सह था इसलिये उनको समाप्त कर दिया गया। जिन स्त्री पुरुषो को यहीं दास बना कर रख लिया गया वे हमारे शक सैनिको की सेवा टहल मे बहुत सुखी है।

उषवदात—किस जनपद के लोग अधिक सिर उठाये हैं?

महामन्त्री—हमारी सीमाओं पर जिनका सम्पर्क यौधेयों और नागों से है वे कुछ उपद्रव कर रहे हैं। हम उन जनपदों के स्त्री, बालकों, ब्राह्मणों और पशुओं का नाश कर रहे हैं। शैव और वैष्णव मन्दिरों को नष्ट कर रहे है। काम दृढ़ता पूर्वक चल रहा है।

उषवदात—प्रत्येक ग्राम के लिये एक एक भोगपति नियुक्त कर दो। उसको आज्ञा हो कि जिस ग्राम मे एक मनुष्य भी सिर उठावे तो उस ग्राम के अष्टकुलपति, कुलपति, ग्रामिक और प्रमुख की तुरन्त अपने क्षत्रप को सूचना दो। क्षत्रप को आदेश है कि सूचना प्राप्त होते ही वह तुरन्त ऐसे पापी को कटवाकर फिकवा दे, और प्रमुखों के हाथ पैर कटवादे।

महामन्त्री—जो आज्ञा।

उषवदात—उत्तर का क्या समाचार है?

महामन्त्री—महाक्षत्रप कुजुल, लियक, पदक, शोडास से उत्तर और पूर्व से यौधेयो और उत्तर—मालवों को घेर रहे हैं। नलपुर का एक व्यक्ति इन्द्रसेन सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर करके विद्रोह का झंडा खड़ा करवा रहा है, उसके पीछे दास ने गूढ़ पुरुष और सर्वगत नियुक्त कर दिये हैं। उसका लोगों मे कुछ प्रभाव है। या तो वह शीघ्र ही हमारे किसी चर द्वारा मारा जायगा या बन्दी किया जायगा। आजकल यह इन्द्रसेन विदिशा और दशार्ण प्रदेश के जनपदों को भड़काने में लगा हुआ सुना गया है।

उषवदात—हूँ! जहा कहीं भी भगवान बुद्ध और उनके मत प्रचारक महात्माओं के बाल, नख, अस्थिया, भोजन करने के या भिक्षा के पात्र या कोई भी चिन्ह प्राप्त हो, उनके ऊपर आदर और भक्ति के साथ स्तूप तथा चैत्य निर्माण करो। विशाल भवन खड़े करो और उन पर जातकों की कथायें सुन्दर मूर्तियों मे उभारो। शिल्पियों को पकड़ो उनको भोजन दो, और, यदि इस पर भी काम करने में आनाकानी करें तो मार डालो। बौद्ध भिक्षुओं के लिये सब प्रकार की सुविधाएं दो। नासिक की गुहाओं में लेख उत्कीर्ण करा दिये गये? विजय का पहला लम्बा डेरा मैंने वहीं डाला था। इसको अब दो वर्ष होते आते हैं।

महामन्त्री—लेख अभी नहीं उत्कीर्ण किये हैं श्रीमान!

उषवदात—अभी तक नहीं उत्कीर्ण किये गये महामन्त्री!!

महामंत्री—(कांपकर) शहानुशाह, इसमें मेरा ही दोष है जो मैने अभी तक पत्र पर लेख नहीं बनवा पाया ।

उषवदात—नहीं कोई बड़ा अपराध नहीं। मुझको भी स्मरण नहीं रहा।

(कालकाचार्य और वकुल का पीतरंग के कोपीन पहिने हुये प्रवेश। परस्पर अभिवादन के उपरान्त उषवदात उनको सम्मान के साथ ऊंचे आसनो पर बिठलाता है ।)

उषवदात—आचार्य, आप हमारे धर्म-महामात्र हैं नासिक की त्रिरश्मि नामक गुहा मे शकों की विजय के सम्बन्ध में लेख उत्कीर्ण कराना है। आप लेख रच दीजिये। एक लेख होगा विजय सम्बन्धी, दूसरा होगा भिक्षुओं को एक गुहा प्रदान के विषय में।

कालकाचार्य—संस्कृत में या प्राकृत में। शहानुशाह ?

उषवदात—मै समझता हूँ धर्म-महामात्र जी, कि दोनो के मिश्रण से लेख बनाया जाय। प्राकृत यहा साधारण जन बोलते और लिखते हैं संस्कृति यहा के अभिजातों और विद्वानों की भाषा है।

कालकाचार्य—सुन्दर कल्पना है शहानुशाह ! मैं अभी लेख लिख कर महामत्री को दिये देता हूँ। एक रहेगा-अपकी हुँकारमात्र से मालव पलायन कर गये जब आप उत्तमभद्रों की रक्षा के लिये आये थे, और दूसरे में भिक्षुओं को गुहा प्रदान कर देने की बात होगी।

उषवदात—धन्यवाद आचार्य।

महामंत्री—मैं तुरन्त दोनों लेख उत्कीर्ण करा दूँगा।

उषवदात—उस आज्ञा के प्रचार का क्या फल हुआ, जिसमें मैंने घोषित किया था, कि जनता के सब लोग अपने को शक कहें, कोई भी अपने को आर्य न कहे और कोई भी यज्ञ न करे।

महामन्त्री—उस आज्ञा का पालन हो रहा है शहानुशाह। जो आज्ञा पालन नहीं करता, वह मार डाला जाता है। केवल बौद्ध और जैन अवध्य हैं।

(एक व्यापारी को दो सैनिक घसीटते हुये लाते है। उनका दलपति महामन्त्री के कान में कुछ कहता है।)

उषवदात—यह कौन है? इसका क्या अपराध है?

महामंत्री—शहानुशाह यह इस नगर का बहुत बड़ा सेठ है। इसके पास लाखों द्रव्य है। स्वर्ण रत्नादि। यह अपने सिर के बालों के जू पकड़ पकड़ कर मारते पाया गया है। मार्ग से लगे हुये चबूतरे पर दिन दहाड़े इस कुकर्म को कर रहा था यह दुष्ट।

उषवदात—तुम कौन हो जी?

सेठ—महाराजाधिराज, मै यहा का एक दीन सेठ हूं! पुराना घराना है। गण का सदस्य रहा हूँ। अपने को शक कहता हू।

उषवदात—बालो के जूं बीन बीन कर मारने का अपराध किया? शक हो या नहीं इससे हमको इस समय प्रयोजन नही है।

सेठ—शाहानुशाह, पहले मेरे घर भर में किसी के बालों में जूं नहीं थे, जब बाहर से आये हुये अपने नये ग्राहकों में मिलने जुलने और बैठने उठने लगा तब से न जाने इनके दल के दल मेरे घर में क्यों और कैसे घुस पडे।

उपवदात—अर्थात यह जूं तुमको हमारे शकों ने दिये!!! यही न?

सेठ—जी—जी—जी—महाराजाधिराज, मैं यह नहीं कहता। मैंने यह कहां कहा।

उषवदात—अच्छा कितने जूं मारे तुमने।

सेठ—महाराजाधिराज, शाहानुशाह, जब बहुत पीड़ित हो गया तब केवल तीन जूं मारे। अब भी बालों में बहुत हैं। मरा जा रहा हूँ उनके काटने से। खुजलाते खुजलाते थक गया हूँ।

कालकाचार्य—भगवन! जूं मारे इसने!! महापाप!!! महा अपराध!!!!

उपवदात—इतनी क्रूरता ! इतनी निर्दयता !! अच्छा सेठ हम तुम्हारा सम्पूर्ण बोझ हलका कर देते है। धर्म महामात्र, इस अपराध का क्या दण्ड है ?

कालकाचार्य—प्राण वध, अथवा पूरी सम्पति अपहृत करके राज-कोष में ले ली जावे।

सेठ—मरा, मरा, मैं मरा। मै शक हो गया हू, दीनबन्धु। मैं शक हूँ

उपवदात—उस से कोई अन्तर नहीं पड़ता। मै तुम्हारे ऊपर बहुत दया करके प्राण वध का दण्ड नहीं देता हूँ परन्तु तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपहृत करता हूँ। आचार्य, आधा सम्पत्ति राजकोष मे जायगी और आधो की लागत से एक विशाल बिहार बनाया जायगा। ले जाओ इसको यहा से।

(सेठ को सैनिक घसीट ले जाते हैं। वह रोता किलपता जाता है।)

उपवदात—राजकुमारी सुनन्दा का पता चला महामन्त्री ?

महामन्त्री—(*कालकाचार्य की ओर कनखियों देखकर*) हा शाहानुशाह, वे विदिशा के जङ्गलों मे कहीं गर्दभिल्ल के साथ है।

कालकाचार्य—(*क्षोभ को संयत करके*) सभा मे इस प्रसङ्ग पर कुछ चर्चा नहीं करना चहता हूं।

उपवदात—इतना तो बतला ही दीजिये कि अब क्या किया जाय आचार्य ?

कालकाचार्य—(*भड़ककर*) मेरे मन में अब और कुछ नहीं हैं। मै शीघ्र ही धर्म प्रचार के कार्य निमित्त बाहर निकल जाऊँगा। (*गिरे हुये स्वर में*) यदि मिल गई तो धर्म में फिर से दीक्षित करूंगा।

उपवदात—(*पिछली बात को अनसुनी करके*) ठीक भी है आचार्य, जब गर्दभिल्ल के साथ उनका विवाह हो गया है, तब कुछ और करना व्यर्थ है। गर्दभिल्ल को यदि पाऊँ तो अवश्य मरवा डालूँ।

कालकाचार्य—(*खिन्न स्वर में*) विवाह नहीं है, बलात्कार है। इस विषय पर मै अब एक शब्द भी नहीं कहना सुनना चाहता हू।

वकुल—(*दृढता के साथ*) निपट लेंगे हम इस समस्या से।

(*चार सैनिक एक कापालिक को बांधे हुये लाते है। उनका नायक महामन्त्री के कान में कुछ कहता है*)

उषवदात—यह कौन है?

महामन्त्री—कापालिक है, अन्नदाता।

उषवदात—कापालिक!

कालकाचार्य—कापालिक!!!

वकुल—कापालिक। कापालिक!! हे भगवान्!!!

उषवदात—इसको क्यों ले आये?

महामन्त्री—यह अपने कपडे के छोर मे मास बाधे हुये नगर के भीतर पकड़ा गया है।

कालकाचार्य—मास बाधे हुये!!!

उषवदात—क्यों रे पापी, मास बाधे था? काहे का मास था?

कापालिक—(*निर्भीकता के साथ*) खाने को गॉठ मे कुछ था नहीं। भीख हम मांगते नहीं। पत्थर के ढेले से एक कपोत मार लिया। खाने के लिये उसके मास को बाध लाये। वस्त्र से रक्त निकलता देख कर सैनिकों ने पकड़ लिया और मुझको मारा। विवश हो गया अन्यथा दो चार धप मैं भी दे देता।

उषवदात—इसका दण्ड धर्ममहामात्र?

कालकाचार्य—प्राण वध। इससे कम और कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता। नगर के भीतर मास लाने से सम्पूर्ण उज्जैन नगरी अपवित्र हो गई है। वह इसके प्राणवध से ही शुद्ध हो सकेगी।

उषवदात—ले जाओ इसको और तुरन्त इसका वध करो।

कापालिक—करदो मेरा बध। शकर मुझ सदृश करोड़ों इस भूमि में उत्पन्न करेंगे जो शकों को निर्वंश करके रहेंगे।

(कापालिक को सैनिक घसीट कर ले जाते हैं)

कालकाचार्य—शाहानुशाह, अब मै अपने पद को त्यागता हूँ। अहिंसा धर्म के प्रचार के लिये मै सुराष्ट्र इत्यादि प्रदेशों मे बिचरण करूँगा।

उषवदात—आपकी कमी हमको बहुत खलेगी।

कालकाचार्य—मेरा निश्चय है शाहानुशाह।

उषवदात—अच्छा, आचार्य, खेद के साथ आपको बिदा देनी पड़ेगी। क्या आप वकुल को भी साथ ले जायेंगे।

कालकाचार्य—न, मै अकेला जाऊंगा। वकुल आपके सम्पर्क मे रहेगा। वह धर्म सम्बन्धी विषयों मे आपकी सहायता करता रहेगा।

वकुल—*(हाथ जोड़कर)* गुरुदेव!

कालकाचार्य—तुम यहीं रहो। गर्दभिल्ल को ढूढ़ने मे उषवदात की सहायता करो। सुनन्दा मिले तो, उसको मेरे निकट कर जाना।

(कालकाचार्य जाता है। द्वार तक उषवदात इत्यादि उसको पहुंचाते है)

उषवदात—*(आसन ग्रहण करने पर)* वकुलजी, मै आपको धर्म महामात्र बना देता, परन्तु आपकी आयु मन मे संकोच उत्पन्न करती है।

वकुल—इस काम मे मेरा चित्त भी नहीं लगेगा। सर्वगत का काम करने की अभिलाषा मुझको अवश्य है। मै यहा की भौगोलिक स्थिति से परिचित हूँ।

उषवदात—हो भी तुम उसके उपयुक्त। मैं हर्षपूर्वक तुमको अपना प्रधान सर्वगत इसी समय नियुक्त करता हूँ। तुम मे यवनों की चतुरता और यहा के लोगो की कुशल बुद्धि है। अनेक भाषाओं के जानकार हो।

गर्दभिल्ल, इन्द्रसेन, विदिशा का रामचन्द्र नाग इत्यादि मेरे परम शत्रु हैं। इनको मारो पकड़ो या जो चाहो चाहे जिस प्रकार, करो और समय समय पर मुझको अपनी गति विधि का परिचय देते रहो।

वकुल—एकान्त में कुछ विनय करना चाहता हूँ।

उपवदात—अवश्य। सर्वगत का काम ही एकान्त में बात करने का है। मेरे निकट आओ (*वकुल आ जाता है*) कहो बिना सकोच के कहो। सर्वगत अवध्य और अदण्डनीय है।

वकुल—(*धीरे से*) अनेक वर्षों के परिश्रम से कुमारी तन्वी गायन वादन और नृत्य मे अत्यन्त कुशल हो गई है। संस्कृत, प्राकृत, और जन-पदों की बोलियों का उनको ज्ञान है। उनकी इच्छा इस कार्य के करने की है। व समर्थ हैं। आपकी अनुमति हो तो मै उनको साथ लेता जाऊं।

उपवदात—मै सहमत हूँ। महाक्षत्रप भूमक क्या कहेंगे, मैं नहीं कह सकता। सुनता हूँ कि वे कपिशा से भी आगे निकल गये हैं। न मालूम कब लौटे—और लौटे भी या नहीं। क्या तन्वी तुम्हारे साथ विवाह करेगी? हम लोग वर्ण भेद जात पात कुछ नहीं मानते। तुम सुन्दर हो और कुशल हो। भूमक कोई आक्षेप नहीं करेंगे। क्या वह तुम से प्रेम करती है?

वकुल—(*संकोच के साथ*) अभी तो ऐसा कुछ नहीं है। उनका मुझ पर स्नेह है, केवल इतना जानता हूँ।

उपवदात—वयस्क हो गई है। उसको अपने वर के चुनने का अधिकार हमारी प्रथा के अनुसार है। मैं उसको सर्वगत का काम करने की अनुमति देता हूँ। परन्तु उसकी रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर रहेगा।

(*पीछे की खिड़की से तन्वी का प्रवेश।*)

तन्वी—(*धीरे से*) रक्षा तो शाहानुशाह, मैं अपनी करलूँगी। मैं शक कन्या हूँ। सब तरह के हथियारों का प्रयोग जानती हूँ। जङ्गलों

पहाड़ों, नदियों, कठोर परिस्थितियों और जटिल समस्याओं में धसने का मुझको व्यसन है। मैंने इस इन्द्रसेन के विषय में बहुत सुना है। यदि मैं इसको मार सकी या किसी तरह वश में कर सकी और आपके चरणों में उसको ला सकी, तो मेरा जन्म सफल होगा। आप मुझको आशीर्वाद दीजिये।

उषवदात—जियो बेटी, सफल होओ अपने कार्य में। सहायता के लिये जब जितनी सेना चाहोगी, तुरन्त तुम्हारे पास पहुँचेगी।

तन्वी—अनुगृहीत हुई।

[*वकुल और तन्वी एक ओर जाते है।*]

तन्वी—हम लोगों को यहा से शीघ्र वेष बदल कर चल देना चाहिये।

वकुल—बहुत अच्छा।

(*वकुल और तन्वी का प्रथान*)

उषवदात—आज का काम समाप्त हुआ महामन्त्री, अब।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—विदिशा से कुछ दूरी पर उदयगिर की गुहायें। वेतवा की एक धार के पास विदिशा और नदी, नालों, पहाड़ियों तथा हरे भरे वृक्षों की पृष्ट भूमि मे उदयगिरि की गुहायें हैं। एक गुहा के सामने कुछ दूर-स्थिति एक टीले की स्वच्छ और चौडी चकली शिला पर इन्द्रसेन बैठा हुआ है। निकट ही विदिशा का राजा रामचन्द्र नाग। रामचंद्र नाग की आयु लगभग पचास वर्ष की है। वह दृढ़ और बलिष्ठ शरीर का तेजस्वी व्यक्ति है। त्रिपुण्ड लगाये हुये है। इन्द्रसेन के भ्रूमध्य में केशर का बिंदु। दोनों योद्धा वेष मे हैं। सिर पर छोटे और कुछ ही भड़कीले किरीट बाँधे है। सरलता ने उन दोनो के तेज को और भी दीप्त कर दिया है। इन्द्रसेन की आयु नौ वर्ष आगे निकल गई है, परंतु उसकी सुरूपता अभिन्न है। केवल मूछें कुछ बढ़ गई हैं। बहुत यात्रा और अनवरत प्रयत्न के कारण वह कुछ सांवला पड़ गया है। समय संध्या के उपरात ऋतु मधु मास का प्रारम्भ]

रामचन्द्रनाग—आर्य, जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही परमात्मा की भिन्न भिन्न शक्तियो के पृथक पृथक नाम हैं, तब विष्णु की

अर्चना का विशेष हठ आप क्यों करते हैं ? विज्ञान वह है जिसे हम जानते हैं, दर्शन वह है, जिसे हम नहीं जानते।

इन्द्रसेन—सहज ही वरदान देने वाले शङ्कर, पालनपोषण करने वाले होते हुये भी वास्तव में रुद्र हैं। दुष्टों और पीड़िकों का विनाश करने के लिये उनको अपना अत्यन्त विशाल कर्म, ताण्डव नृत्य करना पड़ता है। उनकी संहार-वृत्ति में नये उद्भव, नवीन उत्पत्ति के बीज रहते हैं, यह ठीक है, परन्तु हमारे लिये अकेला रुद्र पर्याप्त नहीं हैं। हमको सत्य और सुन्दर भी चाहिये—रुद्र का शिवरूप। नाश करने मे समय कम लगता है, सौन्दर्य और कल्याण के सृजन के लिये बहुत समय चाहिये। इसलिये परमात्मा का जो रूप इस कल्याण कार्य के लिये अधिक व्यापक हो सके, उसकी ओर विशेष ध्यान देना ठीक रहेगा। इस समय तो इसकी और भी अधिक आवश्यकता है।

रामचन्द्र—इस समय तो रुद्र के ताण्डव की अत्यन्त आवश्यकता है। शकों ने लगभग सम्पूर्ण आर्यावर्त्त को पैरो तले रोंद रखा है। मालव, नाग, आरक और बौद्ध भद्र भी जो उस देश द्रोही कालक की आड़ में शकों की आँधी को मध्यदेश में ले आये, महाकष्ट में हैं। वर्णों का उच्छेदन हो रहा है। वर्णशंकर बढ़ते चले जाते हैं। आतंक में आकर अनेक आर्य अपने को शक तक कहने लगे है। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और यज्ञादि देश के एक बड़े भाग में निषिद्ध कर दिये गये हैं। त्यागी विद्वान ब्राह्मणों को कोई आंशिक आदर भी नहीं देता। छोटे छोटे अपराधों पर लोगों को प्राणबध का दण्ड देने की प्रथायें चला दी गई हैं। जनता की भूमि का स्वामी राजा बनाया जा रहा है। पुराने नामों के जन सेवकों को नये अत्याचारी अधिकारों से विभूषित किया जा रहा है। जूं, मशक, और खटमल की रक्षा के मिस आर्यो के रक्त की नदिया बहाई जा रही हैं। अभिजातों, कुलीनों और तपस्वियों को अपदस्थ करने के लिये, पञ्चमों और केवटों को शकों ने क्षत्रिय बना दिया है! मन्दिरों को ध्वस्त

कर करके एडुकों की पूजा कराई जा रही है !! देव, यदि यह समय भी रुद्र शङ्कर के ताण्डव का नहीं है तो क्या वह समय तब आयगा जब आर्य नाम तक का ससार से लोप हो जायगा।

इन्द्रसेन—भक्ति और पुरुषार्थ का, तपस्या और जीवन का त्याग और भोग का, विनय और महिमा का, सौन्दर्य और तेज का, बुद्धि और बल का, विशालता और स्फूर्ति का, कोमलता और दृढ़ता का, क्षमा और दण्ड का, क्रिया और विचार का, शान्ति और सक्रियता का समन्वय वैष्णव धर्म है। शकों को पराजित करके क्या हम उनके बाल बच्चों का वध करेंगे? कभी नहीं, राजन्। यदि वे हमारी सस्कृति के होकर हमारे देश में रहेंगे तो उनकी उसी प्रकार रक्षा की जायगी जैसी आर्य जनो की की जाती है।

रामचन्द्र—आप यह कहते हैं। और वे लोग हमारे देश के रक्त से दिन रात, प्रत्येक क्षण, तर्पण करते चले जा रहे हैं!

इन्द्रसेन—इसका निवारण करने के लिये विष्णु के एक हाथ मे गदा है। संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने के लिये और दुर्वृत्तियों का दमन करने के लिये दूसरे हाथ में चक्र है। स्पष्ट स्वर में नीति और शौर्य के मेल की घोषणा करके जन को जगाने के लिये तीसरे हाथ मे शङ्ख है और विश्व मे, सर्वत्र सावली सलोनी स्मितमयी हरी दूब बढ़ाने और जीवन को पुरस्कार तथा वरदान देने के लिये चौथे हाथ मे कमल है।

रामचन्द्र—फिर विष्णु के सामने घाघरा, घुंघरू और ओढ़नी पहिन कर पुरुष नाच क्यों उठे हैं?

इन्द्रसेन—यह भक्ति का बीभत्स है। भक्ति का वास्तविक रूप तन्मयता है, तादृशता है। कुछ लोग शङ्ख, चक्र और गदा को त्याग कर केवल कमल की पूजा मे लीन हो जाते हैं। यह उनकी भूल है। भक्ति और पुरुषार्थ का, हंस और मयूर का, मेल होना चाहिये।

रामचन्द्र—मै समझा नहीं देव।

इन्द्रसेन—हंस, बुद्धि-विवेक, प्रज्ञा, मेधा, भक्ति और संस्कृति का प्रतीक है; मयूर, तेज, बल और पराक्रम का। दोनों का समन्वय ही आर्य संस्कृति है। जीवन और परलोक—दोनों की प्राप्ति का एक मात्र साधन।

रामचन्द्र—कापालिकों ने प्रण किया है कि वे शकों के मुण्डों की माला पहिनेंगे और उनके शरीर की राख को अपने तन में मलेंगे। क्या यह अनुचित है?

इन्द्रसेन—इससे बढ़कर अनुचित और क्या होगा? जब शकों की पराजय हो जायगी और संस्कृति फिर अपने प्रबल मनोहर रूप में व्याप्त होने को होगी तब ये कापालिक किसकी मुण्डमाला पहिनेंगे? किसकी भस्म शरीर पर लपेटेंगे?

रामचन्द्र—मै माने लेता हूँ कि कापालिक उचित नहीं कर रहे हैं। परन्तु आप जिस समन्वय की बात कह रहे हैं वह जनता की समझ में कैसे आवेगा?

इन्द्रसेन—हमारे समाज में अतीत का दिया हुआ यदि बहुत सा ग्राह्य है तो बहुत सा अग्राह्य भी है। एक समय में जो आचार विचार मानव की उन्नति में साधक हुये थे, वे आज उसके विकास में बाधक हो रहे हैं। मानव बढ़ गया और वे आचार विचार संकीर्ण हो गये हैं, वे मानव को कस रहे हैं, और उसको दुर्बल बना रहे हैं। अब वे अग्राह्य हैं। हम लोग अपने नित्य के जीवन और व्यवहार से इसको स्पष्ट कर सकते हैं। जनता चेतन है। जनता के सचेत विकास का आचार अनुगमन करता है। हमारी बात उसकी समझ में शीघ्र आ जायगी।

रामचन्द्र—जनता तो नये नये मन्दिर और नई नई मूर्तियां बना उठेगी।

इन्द्रसेन—ठीक है, आर्य। आप अपने वंश मे सर्पो की ही पूजा को देखो। एक समय में, सर्प रक्षा और आक्रमण का प्रतीक था। इसी लिये वह अपनाया गया, परन्तु कालान्तर में प्रतीक का अर्थ और अभिप्राय लोग भूल गये और उसके रूप को पूज उठे!

रामचन्द्र—किसी दिन आपके हंस मयूर की भी यही दशा होगी देव।

इन्द्रसेन—न होगी आर्य। ये दोनों पक्षी सुन्दर हैं। उनकी कल्पना नई है और मै समन्वय का प्रयोजन सीधा और स्पष्ट समझता फिरता हूँ, इसलिये इनके लिये मन्दिर नहीं बनाये जायगे वे केवल हमारी पताका पर रहेगे जिसके नीचे समस्त आर्यावर्त शकों से लड़ रहा है, लड़ेगा, और उनको पराजित करेगा। फिर हंस-मयूर आर्यों के विवेक में समा जायगे।

रामचन्द्र—आन्ध्रनरेश शातकर्णि ने भी मान लिया हंस-मयूर को? उसकी ध्वजा पर तो गरुड़ है।

इन्द्रसेन—गरुड़ विष्णु का वाहन है, इसलिये आदरणीय है, परन्तु गरुड और मयूर परस्पर कलह कर सकते हैं, इसलिये हंस और मयूर हमारे लिये अधिक शोभन है। आप तो हंस-मयूर के तत्व को समझते हैं। आप तो उसको मानते हैं?

रामचन्द्र—हम नागजन अपने शंकर की मूर्ति उष्णीष में बांधेंगे और हंस मयूरी झण्डे के नीचे लड़ेंगे। अपनी गङ्गा यमुना और देशों को अत्याचारी शकों से मुक्त करना चाहते हैं। हम सदा से गणतन्त्रों के सहायक तथा समर्थक होते चले आये हैं। (मुस्कराकर) हम हंस-मयूर के तत्व को समझ सकें या न समझ सकें, परन्तु उसको मानेंगे अवश्य

इन्द्रसेन—आर्य, मै आपको बधाई देता हू। हम अवश्य अपने देश को मुक्त करेंगे। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। हम भगवान की चतुर्भुजी मूर्ति को हृदय मे आसानी करके जब चार हाथ लम्बी प्रत्यंचा वाले धनुष पर छः हाथ लम्बे बाणों को संस्कृति और स्वाधीनता विनाशक अत्याचारी शकों पर चलायेंगे तब कहेगे गणतन्त्रों की जय! कला और शौर्य अनुरक्त विदिशा के नागों की जय!!

रामचन्द्र—(खड़े होकर) मालव गौरव, हम लोगों को आप दृढ पायेंगे। और कोई आदेश, देव? कुछ समय उपरान्त उदयगिरि की

उस गुहा में जो भीतर से बहुत विस्तृत है, थोड़े से नृत्य और गायन की मनोरञ्जन-योजना है ।

इन्द्रसेन—मै सब कुछ कह चुका। केवल एक बात रह गई है। वह यह कि शातकर्णि-यज्ञो का पक्षपाती होने के कारण स्वयं अश्वमेघ करना चाहता है। उसको चक्रवर्ती कहलाने का मोह है वह और कुछ नहीं चाहता—न सोना-चादी और न किसी जनपद मे कोई अधिकार। उसकी इस महात्वाकाक्षा मे आप बाधक न होना। समय की याचना है।

रामचन्द्र—राजा का अभिषेक केवल जन-गण के स्वराज्य के लिये होता है। शातकर्णि स्वराट् पद से संतुष्ट न रहकर सम्राट बनना चाहता है। गण-तन्त्र इस लोभ को असम्भव कर देने की समर्थता रखते हैं। *(आधे क्षण सोचकर)* परन्तु समय असाधारण व्याधि का है। हम लोग कोई बाधा नहीं डालेंगे। और आगे का कार्य-क्रम देव ?

इन्द्रसेन—शातकर्णि सुराष्ट्र की दिशा में शकों को दबायगा। यौधेय उत्तर दिशा मे, आप और मै मालवों को लेकर दक्षिण और पूर्व से। जान पड़ता है कि अपनी सेना का युद्ध नर्मदा के निकट कहीं त्रिपुरी के आस पास होगा। शको के दमन में हमारे काण्वजन भी सहायक होगे।

रामचन्द्र—अब उस मनोरञ्जन के लिये चलिये। अप्सरा द्वारा शुकदेव की तपस्या को डिगाने का रूपक किया जा रहा है। मंजुलिका नाम की एक प्रसिद्ध नर्तकी और गायिका अप्सरा की भूमिका साधेगी और श्री कण्ठ नाम का एक गुणवन्त शुकदेव का अभिनय करेगा।

(दोनों टेक पर से उतरते है। कन्दरा के द्वार पर जाते है। पर्दा उठता है। सामने कन्दरा के प्रेक्षणगृह मे इधर उधर सुन्दर चित्र बने है। और खम्भो तथा बडेरियो पर विविध मूर्तियां। गृह-चिंतक की योजना और कारीगरी का श्रेष्ठ नमूना। शुकदेव के रूप मे व्याकुल ध्यान मग्न बैठा है। तन्वी अब अपने पूर्ण यौवन में है और बहुत सजीली वेष-भूषा मे। गायन के साथ नृत्य कर रही है। इन्द्रसेन और रामचन्द्र नाग प्रेक्षण-शाला मे आगे जा बैठते हैं।)

शाला मे चुने हुये दर्शक पहले से बैठे हुये है । गुहा में दीपों का प्रचुर प्रकाश है ।)

❀ गीत ❀

(राग-देश मे)

मैं वसन्त की दूती तुमसे मांग रही इतना वरदान ।
पलक मात्र के लिये त्यागदो इस मुद्रा का असमय ध्यान ।।
कलियो की पहली मुस्कान,
भौंरे की गरबीली तान,
सुमनों का मधुमय रसपान,
सौरभ का पदरज संधान,
ललक ललक कर चाह रहे हैं इस बन में थोड़ा सा मान
मै वसन्त की दूती तुमसे मांग रही इतना वरदान ।।

तन्वी—(स्नेहसिक्त स्वर मे) प्राणों के प्यारे ! वसन्त के सौरभ !! मनकी फुलवारी के भ्रमर !!! सुन्दर शुकदेव !

(वकुल एक क्षण के लिए आंख खोलकर फिर बंद कर लेता है)

इन्द्रसेन—(रामचंद्र से धीरे से) शुकदेव बहुत सुन्दर पात्र है, और अप्सरा तो वास्तव मे अप्सरा है । कहा के हैं ये लोग ?

रामचन्द्र—कुछ समय से इधर ही रहते हैं । वैसे सुराष्ट्र के निवासी हैं । शको के आक्रमण के कारण घर द्वार छोड़कर भाग आये हैं

इन्द्रसेन—ललितकलाओं के कुचलने वाले शकों का नाश हँस-मयूर शीघ्र करेगा ('हंसमयूर' शब्द का उच्चारण तीव्रता के साथ निकल जाता है । उसको सुनकर तन्वी कुछ चौकन्नी सी होती है । फिर पूर्ववत नाचने गाने लगती है । परन्तु बीच बीच में इन्द्रसेन को आँख गड़ा कर देखती है । वह पहले ध्यानमग्न शुकदेव से कुछ दूर नाचती है, फिर निकट आजाती है । वकुल एक क्षण के लिये उसकी ओर देखता है फिर ध्यान-मग्न हो जाता है ।)

इन्द्रसेन—(*धीरे से*) शुकदेव का भी अभिनय मनोहर हो रहा है और अप्सरा तो ललित कला का मानो अवतार ही है। दोनों परस्पर कौन है ? क्या पति-पत्नी ?

रामचन्द्र—सुनता हूँ—भाई बहिन का नाता है। अप्सरा अविवाहित है।

(*थोड़ी देर मे अभिनय समाप्त होता है और वे दोनो दर्शको के सामने हाथ जोडकर खडे हो जाते है। तन्वी की दृष्टि एक क्षण के लिये इन्द्रसेन पर टिक जाती है।*)

इन्द्रसेन—मुझको विदिशा से शीघ्र चला जाना है, नहीं तो एकाध दिन तुम लोगों का अभिनय और देखता। शकों की शक्ति का नाश करने के उपरान्त अवश्य एक दिन तुम्हारा अभिनय अधिक समय तक देखूंगा। तुम लोग हंस-मयूर मत का प्रचार अपनी कला द्वारा बड़ी कुशलता के साथ कर सकते हो।

रामचन्द्र—मै तुम लोगो को समझाऊँगा हस-मयूर मत क्या है। यह आर्यों की रक्षा का पताका, विष्णु का शखनाद और शदाशिव का त्रिशूल है। बोलो हस-मयूर की जय। शदासिव की जय।

(*सब लोग जय जयकार करते हैं। तन्वी संकेतपूर्ण दृष्टि से एक क्षण वकुल को देखती है।*)

इन्द्रसेन—मन्जुलिके, यदि तुम श्रीकंठ की ओर तपस्या के समय, जब इन्होने आख खोली, इस प्रकार देखती तो कह नही सकता इनकी तपस्या रहती या जाती।

(*तन्वी मुस्करा कर नमस्कार करती है।*)

तन्वी—मै अनुगृहीत हुई, देव।

(*सब दर्शक कंदरा के बाहर टेक वाले मैदान मे आजाते है। कंदरा का पर्दा गिरता है। इसके उपरांत सब दर्शको का प्रस्थान*)

दूसरा दृश्य

[स्थान—पहाड़ी जंगल मार्ग। आगे आगे सामान ढोने वाले पीछे गर्दभिल्ल और सुनंदा। गर्दभिल्ल दुर्बल होगया है। कुछ झुका सा। सुनन्दा वैसे स्वस्थ शांत है। बोझ ढोने वाले आगे निकल जाते हैं। समय दिन]

गर्दभिल्ल—न जाने त्रिपुरी और कितनी दूर है। मैं तो बहुत थक गया हूँ।

सुनन्दा—नाथ, मैं आपको अपनी पीठ पर लिये लेती हूँ। मैं नहीं थकी हूँ।

गर्दभिल्ल—(*हांफ को संभालने के लिये ठहर कर*) मालवजन मुझको नहीं चाहते शक मुझसे घृणा करते हैं। शैव और वैष्णव मुझको पापी समझते हैं और बौद्ध निकम्मा। जैन तो मुझको नरक का कीड़ा कहने से नहीं हिचकते। तुम अपनी पीठ पर मेरा निरर्थक बोझ ढोने की बात कहती हो सुनन्दा !

सुनन्दा—मैं आपकी ऊषा, जीवन पुष्पों की वर्षा, प्राणों की बसन्त सञ्जीविनी और मनका विस्मय अवश्य थी और आप मेरे हृदय के हंस हैं। मैं आपको अपनी पीठ पर फूल सदृश उठा लूँगी।

गर्दभिल्ल—सुनन्दा, मैंने तुमको क्या से क्या कर दिया ! मेरी वासना के उद्‌गार तुम्हारे भ्रमजाल बने। तुमने मुझको नहीं पहचान पाया। परिताप के मारे जलता रहता हू। ओह ! मुझसा पापी—

सुनन्दा—नाथ, यह बात आपके योग्य नहीं है। आप मानव हैं। बस यह बात किसी ने नहीं पहिचान पाई।

गर्दभिल्ल—निराश्रय होने पर अब देख रहा हूँ सच्चा प्रेम क्या होता है। जो बात वासना नहीं सिखला सकी उसको विपद ने स्पष्ट दिखला दिया। देवी, तुम्हारी शक्ति पाकर अब मैं सच्चे जीवन को मुँह

दिखलाने योग्य बनूँगा। त्रिपुरी चलकर मै शकों के विरुद्ध अलख को जगाऊंगा। जीवन को निश्चय के साथ तुम्हारे सहयोग से देखूँगा।

सुनन्दा—नाथ, मे क्या कहूँ, क्या आप अभी तक नहीं समझे ?

गर्दभिल्ल—ऐं। हा। हा—ठीक है।

सुनन्दा—मैं आर्य नारी हूँ, और धर्म है मेरा आर्य सस्कृत की रक्षा करना।

गर्दभिल्ल—*(सीधा खड़ा होकर)* देवी, मै तुम्हारे प्रेम के योग्य होने की निरन्तर साधना करूँगा। चलो, बोझ ढोने वाले कुछ आगे निकल गये हैं। त्रिपुरी और नर्मदा चाहे जितनी दूर हो ऐसा लग रहा है, जैसे इन्हीं पहाड़ियों की ओट मे हो। त्रिपुरी में आन्ध्रनरेश के प्रभाव मे कायत्र राजा का शासन है। मेरे कर्तव्य को वहा आश्रय मिलेगा।

सुनन्दा—*(मुस्कराकर)* स्वस्ति।

गर्दभिल्ल—स्वस्ति, स्वस्ति। देवी, आज मै इस स्वस्ति मे वज्र के बल का रूप देख रहा हूँ। *(प्रस्थान)*

(दूसरी ओर से वकुल और तन्वी का धीरे धीरे प्रवेश। इनका सामान ढोने वाले एक ओर बैठ जाते है। तन्वी और वकुल में धीरे धीरे बातें होती है।)

वकुल—सर्वगत का काम कितना दुष्कर है इसको महाक्षत्रप अनुभव नहीं कर सकते।

तन्वी—सर्वगत का फिर अर्थ ही क्या रहता ? सर्वगत पाटल की पखुड़ियों के साथ तो खेलता नहीं है।

वकुल—तब चलो आगे। विपदों का सामाना करने में हम मे से कोई नहीं हिचकता ?

तन्वी—मैं सोचती हूँ और आगे जाना व्यर्थ है। गर्दभिल्ल हाथ से निकल गया। परन्तु अब उसमें विष नहीं रहा। एक बार मन चाहता था हथियार या विष से मारकर समाप्त करदो और सुनन्दा को बाध ले चलो। फिर सोचा व्यर्थ है। जो समय त्रिपुरी में व्यय किया जाने को

है, उसको वेत्रवती और सिन्धु के बनों और नगरों मे काम में लाओ। इन्द्रसेन कही अधिक भयंकर है। भारत मे शकों का इस समय, सबसे बड़ा वैरी वही है।

वकुल—(ढले हुये नेत्रों से) सुनन्दा गर्दभिल्ल को 'नाथ' कैसे मिठास के साथ कहती थी! सुना था न? गर्दभिल्ल को नहीं मारना है तो सुनन्दा को पकड़ कर ले चलना निष्प्रयोजन है।

तन्वी—आचार्य की बात का स्मरण है?

वकुल—स्मरण है, परन्तु अपना अधिक स्पष्ट लक्ष्य इन्द्रसेन है।

तन्वी—तब लौट चलो। इन्द्रसेन कहीं बड़ा लक्ष्य है। उस रात उदयगिरि की कन्दरा मे वह मेरे नाचने गाने पर मुग्ध सा दिखता था। सहज ही हाथ पड़ जाने की सम्भावना है।

वकुल—उस रात तो तुमने गुहा को प्रदीप्त कर दिया मञ्जुलिके। आह मन की मन में रही—मुझको आँख न खोलने और मूर्ख सा बना बैठा रहने का अभिनय करना पड़ा! केवल एक बार आँख खोल पाई। तुम्हारा उस दिन का रूप भुलाये नहीं भूलता।

तन्वी—अभिनेता और अभिनेत्रियों का रूप क्या? सब कृतिम। नितान्त छल।

वकुल—मै उस समय सचमुच सोच रहा था कि मञ्जुलिका मुझको मना रही है, मैं रूठा हुआ हू और वह प्रेम और वान्छा का अमृत मेरे ऊपर उडेल रही है। मै आँखे मूंदे हुये था, परन्तु उस घने अन्धकार में उजाले की कितनी लौ बार बार मुझको दिखलाई पड़ रही थी! तुम प्रेम में मतवाली थीं, मेरे प्रेम को उकसाने के लिये चिनौतियों पर चिनौतियों दे रही थीं। मैं तुम्हारे रूप और रस की कल्पना कर कर के मन मसोस मसोस कर रह रह जाता था।

तन्वी—मै चाहती थी कि हमारे दर्शक मन मसोस मसोस कर रह जायं, कदाचित् में सफल भी हुई। इन्द्रसेन पर मेरा प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

वकुल—मैं अपनी बात कह रहा था। मै चाहता था कि वह ध्यान जो उस पत्थर के टुकड़े रामचन्द्र शैव को दिया जा रहा था और जो उस रगीले वैष्णव इन्द्रसेन को, वह मुझको मिलता। मै कितना कृतार्थ होता।

तन्वी—*(साश्चर्य)* नाटक करने वालियों मे प्रेम! तुम क्या पागल हो वकुल! अभिनेत्रिया प्रेम करने लगे तो हुआ उनका व्यवसाय समाप्त और कला का हुआ विनाश। प्रेम तो उनके साथ मूर्ख दर्शक करते हैं जो आते है नाटकशाला मे मनोरञ्जन के लिये और लौटते हैं साथ लेकर उन्माद। तुमको रंगमन्च पर 'प्राणों से प्यारे' 'बसत के सौरभ' 'मन की फुलवारी के भ्रमर, कहने से दर्शक सोचते होंगे मै उनसे कह रही हू—या उनसे कहने लगू। और देखो जब अभिनेत्रिया नृत्य करती हुई देह की मोचो, लोचो और भाव भगियो द्वारा अन्तर्निहित आकाङ्क्षाओ को मुक्तता के साथ व्यक्त करती हैं, तब प्रत्येक दर्शक अपने को ही सुन्दरियों के उस प्रयास का लक्ष्य समझने लगता है। यही अभिनेत्रियों का लक्ष्य भेद भी है *(हँसते है)* दर्शक बोध और अबोध की भंवर से, अभिनेत्रियां निश्चलता के हिमालय पर। हिमालय से ध्वनि उठती है प्राणनाथ!' और वसन्त के सौरभ!!' की, जैसे हिम में कोई सौरभ हो। अरे!! थकावट से विश्राम पाने के क्षणो मे, मै बहुत कह गई। पर मेरा कथन ठीक है न?

वकुल—*(दूसरी ओर देखते हुये)* मै चाहता हूँ, रंगमञ्च से बाहर तुम मुझ से प्राणनाथ कह सको।

तन्वी—*(चिहुँक कर)* अच्छा! यह बात!! आज यह रङ्ग चढ़ रहा है!!! अभिनेत्री से प्रेम की आशा!!!! और वह अभिनेत्री भी शकराज की सर्वगत!!!!! मरुभूमि में जल ढूंढ रहे हो वकुल! मेरे कथन को तुम बहुत समझे!

वकुल—सोतो जानता हूँ। मेरी बात को किसी नाठक का घरू संस्करण ही समझ लेना। परन्तु मेरे मन के एक कोने में थोड़ी सी आशा

भी है—कोई एक दिन ऐसा आयगा जब नाटक जीवन का एक सच्चा भाग भी बन जायगा। तन्वी, मञ्जुलिका, क्या तुम्हारे हृदय में प्रेम रञ्चमात्र भी नहीं है ?

तन्वी—रङ्गमञ्च पर तुमने यह बात कही होती तो मैं लाज सकोच के मारे सिकुड़ सी जाती। कनखियों देखती। उल्टी सासें चलाती। बरोनियों में एकाध आसू को भी उलझा देती। दर्शक सोचते मै प्रेम की कसक के मारे मरी जा रही हूँ। परन्तु यह स्थान जंगल है, जंगल, नाटकशाला नहीं है और ये दूर बैठे भारवाहक दर्शक नहीं हैं जिनके रिझाने की मेरे मन में लालसा हो। श्रीमान् वकुल जी, तुम्हारी चेतना क्या कहीं घास चरने चली गई! मेरे मन मे प्रेम! तुम्हारे हृदय के किसी कोने में आशा !!

वकुल—मैने तुम्हारे हृदय की बात पूछी थी।

तन्वी—भाई वाह! गुप्तचर के मुँह से क्या ये शब्द शोभा देते हैं ? अभी तक काम तो कुछ कर नहीं पाया और प्रेम सपाटे मारने लगा! त्रिपुरी की ओर पहले भी घूम चुके हैं और वहा के पास पड़ोस मे नृत्य गान और नाट्य भी किये हैं। पर्याप्त समय व्यतीत किया परन्तु इतना ही तो जान सके कि शातकर्णि और कण्वराज शकों के विरुद्ध तैयारियाँ कर रहे हैं! अब आया है तुरन्त कुछ काम करने का समय। इन्द्रसेन को मार लिया या अधिकार में कर लिया तो जान लो कि शकों की आधी से भी अधिक विजय हो हुई। अभी इन बातों को मन से दूर रक्खो। जो काम सामने है केवल उसको सोचो। चलो। इन्द्रसेन के अनुसन्धान में।

वकुल—मैं अब सचेत हो गया हू, तन्वी। क्षमा करना। परन्तु मैं यह कभी मानने को तैयार नहीं कि मानव के भीतर मानव हृदय नहीं हो सकता।

तन्वी—इन्द्रसेन कभी मिला तो दिखलाऊँगी। तुमने उसका निरीक्षण नहीं किया। वह जान पड़ता है ऐसा पुरुष जिसका लक्ष्य भेद सहज प्रतीत

नहीं होता। अपना शत्रु न होता तो मैं बिना किसी संशय के कहती—यह है एक ऐसा, जिसको नारी अपना कुछ भेंट कर सकती है।

वकुल—गुप्तचर के मुँह से ये शब्द !

तन्वी—(हँसकर) गुप्तचर, गुप्तचर ही को तो सावधान कर रहा है। अब चलो उसी दिशा में जहां इस समय इन्द्रसेन प्रवास में होगा। अपना कार्यक्षेत्र वही है।

वकुल—संभव है।

(वकुल भारवाहकों को लौटा लेता है। वे सब जिस ओर से आये थे उसी ओर प्रस्थान करते हैं।)

तीसरा दृश्य

[स्थान—दुग्धकुण्य ग्राम। समय—दिन। एक वर्तुलाकार बड़ी झील के किनारे गांव बसा हुआ है। गांव बड़ा है। झील के दो पार्श्वों पर ऊँची ऊँची पहाड़ियां हैं। तीसरी दिशा में मैदान ऊँचा होता चला गया है। चौथी ओर झील एक बड़े बांध से टेक दी गई है। उपर, बीच बीच में शिव और विष्णु के कुछ मन्दिर हैं। सेना का शिविर गांव से अलग, कुछ दूरी पर है। एक छोटे से भवन पर ऊँचे लट्ठे के सिरे से हंस-मयूर के चित्रों की अरुण रंग वाली पताका लहरा रही है। हंस-मयूर के ऊपर एक चक्र अंकित है। उस भवन पर 'हंस-मयूर'-मन्दिर लिखा हुआ है। भवन के आगे आंगण है। आंगण के पार्श्वों से दोनों ओर के कक्षों में जाने के लिये द्वार है। इन द्वारों के सामने, ओट के लिये छोटी छोटी दीवारें हैं जो छेद वाली और कहीं कहीं से टूटी फूटी भी है। एक ओर से आंगण में इन्द्रसेन और उसका एक साथी आते है। ऋतु हेमन्त।]

साथी—आदर्श कुछ कठिनता के साथ जनता के गले उतरता है, परन्तु जो कोई उसको समझ लेता है उसमे दृढ़ता और निर्भीकता बहुत आजाती है !

इन्द्रसेन—मंजुली और श्रीकण्ठ के अभिनय का प्रभाव कैसा हो रहा है ?

साथी—नाटक कथानक बहुत उत्तेजनापूर्ण है, जनता आपके वाङ्मय और उन लोगों के नाटक से उद्दीत हो गई है। लड़ जाने के लिये व्याकुल है।

इन्द्रसेन—(*एक क्षण सोचकर*) नाटक का मयूर वाला अङ्क जनता के पुरुषार्थ को चपल कर रहा है और हँस वाला अङ्क उस उत्तेजना के ओज को सुरक्षित, घनीभूत और दृढ़ नहीं किये है। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। उदण्डता को निर्भीकता का नाम नहीं दिया जा सकता है और न दुश्शीलता को तथा आतङ्क को वीरता का। हँस और मयूर के गुणों का—विवेक और साहस का, समान समन्वय होना चाहिये।

साथी—वैसे, देव, उन दोनों का खेल है विनोदपूर्ण। उस विनोद के द्वारा जनता उत्साह से ओतप्रोत हो हो जा रही है। (*आतुर सा होकर*) परन्तु आपके बचनों को उसका अधिक श्रेय है।

इन्द्रसेन—(*मुस्कराकर*) वह परिणाम विष्णु के उस रूप को ग्रहण करने का है। भ्रम पूर्ण और शिथिल आदर्शों ने जनमन को अस्त-व्यस्त सा कर दिया है। निर्भ्रम विवेक ही शत्रु का दृढ़ता के साथ सामना करने की शक्ति को संचालित कर सकता है। यह शक्ति प्रत्येक नरनारी की प्रकृति में निहित है, कभी कोई भ्रम इसको शिथिल कर देता है, कोई विखेर देता है और कोई प्रचण्ड कर देता है। विष्णु की भावना द्वारा इसका व्यापक संङ्गठन आवश्यक है। तभी शक्ति के भाडार का निर्माण होगा। मेरी कामना है कि जनता अपनी सोई हुई, खोई हुई, शक्ति को विष्णु की साधना द्वारा पुनः प्राप्त करे ! मन्जुली को भेज दो। हां—श्रीकंठ भी आ सकता है।

साथी—अभी भेजता हू, देव (*जाता है*)

(*इन्द्रसेन विचार मग्न टहलने लगता है। एक ओर से तन्वी आता है। वह फूलों से केश सजाये हुये है। उसकी वेश-भूषा भी आकर्ष है। उसके पीछे पीछे वकुल आता है। वह अपनी वास्तविकता को श्रीकण्ठ नाम से छिपाये हुये है।*)

इन्द्रसेन—श्री कण्ठ, तुम अभिनय में अतिशयता न लाओ तो तुम्हारा अभिनय सुन्दर हो सकता है। तुम्हारा भावोन्मेष जनमन को उन्मत्त सा कर देता है, परन्तु उद्देश्य उसको संयत सजगता देने का है।

वकुल—देव, मैं कुछ तो करने में समर्थ हुआ। आगे आपके निर्देश के अनुकूल कार्य करूँगा।

(*मंजुलिका के चेहरे पर सलज्ज मुस्कान है।*)

इन्द्रसेन—अच्छा तुम उधर जा बैठो; तब तक मैं मन्जुली से बात करूँगा।

(*वकुल नीचे नीचे देखता हुआ जाता है, परन्तु वह द्वार के सामने छेद वाली भीत के पीछे खडा हो जाता है।*)

तन्वी—अब कुछ प्रसाद मुझको भी, देव

इन्द्रसेन—तुमने हंस-मयूर नाटक को इस प्रदेश में कई वार खेला है, पर विवेक और तेज के सामञ्जस्य की जो कहानी तुम्हारे नाटक का आधार है वह कुछ यों ही रही।

तन्वी—यों ही रही देव! आपसे कहा था कि कहानी बना दीजिये नाटक में उसको हम लोग परिणत कर लेंगे, पर आपने कुछ किया ही नहीं

इन्द्रसेन—मुझको अवकाश नहीं मिला।

तन्वी—अच्छा देव, हमारा नृत्य-गान कैसा रहा? यहां की जनता को कैसा रुचा होगा?

(*सङ्कोच के आवरण में लुभाने का अभिनय करती है।*)

इन्द्रसेन—तुम्हारा नृत्य और गायन जो उदयगिरि में देखा था वैसा ही अब भी कलापूर्ण है, परन्तु नाटक की घटना निरी कल्पना थी

और कुछ अस्त-व्यस्त, इसलिये लोग नाचने गाने पर रीझकर और कहानी पर खीझकर चले गये। (हँसता है)

तन्वी—(अप्रतिहत) वास्तव मे देव, नाटक का मूल भाव अभी हम लोगों की समझ मे नहीं आया है, इसलिये हम उसको ठीक प्रकार से मूर्तिमन्त नहीं कर सके।

इन्द्रसेन—भाव, मन्जुलिका, संक्षेप मे यह है। केवल नीति से, केवल शान्ति से, केवल दया और अहिंसा से संसार का काम नहीं चल सकता। बड़े गुण होते हुये भी केवल इनके प्रभाव मे जन और जनपद के जनपद, कातर कायर और निकम्मे हो जाते हैं। आक्रमणकारी उनपर टूटे और वे नष्ट हुये। केवल नीति एसे शत्रु के विरोध में काम दे सकती है जो केवल नीति का माननेवाला हो, परन्तु शक सदृश बर्बर और निर्दय शत्रुओ के सन्मुख केवल नीति की शिक्षा सहायता नही कर सकती केवल नीति और अहिंसा का प्रतीक है हंस।

तन्वी—और आपने बतलाया था—

इन्द्रसेन—कई बार सुनो। फिर बतलाता हूँ—केवल शूरता, हत्याओं और रक्तपात की अखण्ड लड़ी है, यह केवल पाशविक बल है; इसका प्रतीक है मयूर। ससार और जीवन, इन दोनों के समान मेल से ही, चल सकते हैं, तुम्हारे नाटक में इस भाव की पुष्टि के लिये घटना अच्छी नहीं बनाई गई।

तन्वी—(*भोलेपन के साथ*) देव, सुनती हूँ शास्त्रों ने उन सब गुणों को दुर्गुण कहा है जिनका प्रतीक मयूर है। इसलिये कहानी ठीक नही बन पाती।

इन्द्रसेन—मञ्जुलिके, तुम सुराष्ट्र की हो। सुन्दर प्यारा सुराष्ट्र बारम्बार शकों के पैरों के नीचे रुँद-रुँद जाता है। सुराष्ट्र केवल हंस के गुणों का पुजारी है। इस बात को ध्यान में रक्खो तो कहानी ठीक बन जायगी।

तन्वी—देव, मालव क्यो रह गये ?

इन्द्रसेन—वहा एक ओर कापालिको की केवल बर्बरता थी और दूसरी ओर प्रेम के उन्माद मे चूर गर्दभिल्ल जो इस बात को भूल गया कि वह जनपदो का नायक है, शकों का शाहानुशाह नहीं है, केवल एक जन-नायक है। यौधेयों को देखो। उन्होंने मुल्तान के पास कहरूर में शकों की सम्मिलित शक्ति की धज्जिया उड़ादीं। शक काश्मीर और कपिशा के उत्तर से एकत्र होकर फिर टूट पड़ने की योजना कर रहे हैं, परन्तु हम भी उनको परास्त करके रहेगे। नलपुर, पद्मावती और मथुरा के जनपद हमारे अधिकार या प्रभाव मे आगये हैं। हम लोगों ने ऐसी योजना बनाई है कि उषवदात को त्रिपुरी के आस-पास ही कहीं युद्ध करने के लिये विवश होना पड़े। उस युद्ध में शक ऐसे परास्त होंगे कि भारतवर्ष भर में कहीं भी उनकी शक्ति शेष नही रहेगी।

तन्वी—एक शकनायक भूमक नाम का भी सुना गया है। वह बहुत प्रतापी है।

इन्द्रसेन—हा वह प्रचण्ड दुष्ट कहीं उत्तर की ओर था। जयमन्त्र-धारी यौधेयों ने उसको पराजित कर दिया, सुना घायल हो गया है, कदाचित् मर गया होगा।

(तन्वी घबरा जाती है। परन्तु अपनी चिता तथा उद्विग्नता को कठोर प्रयास से दबाती है। भाव को छिपाने के लिये सिर नीचा कर लेती है।)

इन्द्रसेन—मन्जुलिके, चुप कैसीं हो गईं ? क्या बात है ?

तन्वी—(*नीचा सिर किये हुये*) देव,—देव,—मै आज एक भ··ख भीख···मागने आई थी।

इन्द्रसेन—मुझसे ! क्या मांगने आई थीं, मन्जुलिके ?

तन्वी— *सँभालती हुई)* हा देव,—नहीं, कुछ नहीं देव।

इन्द्रसेन—तुम अधीर क्यों हो गईं।

तन्वी—(*और भी सँभल कर*) नहीं, कुछ नहीं। (*सलज्ज मुस्कान का प्रयास करती है*)

इन्द्रसेन—तुम्हारी बात क्या भूमक से कुछ सम्बन्ध रखती है ?
(*आंख गडा कर देखता है।*)

तन्वी—(*दृढ़ स्वर में*) नहीं तो देव।

इन्द्रसेन—फिर क्या बात है ? कह डालो न।

तन्वी—नाटक और अभिनय–कला की ही बात करना चाहती हूँ।

इन्द्रसेन—तुम्हारे मन में कोई और प्रसङ्ग है। झटका सा खागई हो। छिपाओ मत। बोलो।

तन्वी—(*फिर विचलित होकर*) यौधेयों को जयमन्त्रधारी क्यों कहते हैं।

इन्द्रसेन—इसको सारा देश जनता है—यौधेयों को युद्ध में कभी किसी ने परास्त नहीं कर पाया, इसलिये वे जयमन्त्रधारी कहलाते हैं। परन्तु यौधेय तुम्हारे इस प्रकार विचलित होने के कारण नहीं हो सकते। वास्तवक कारण अभी दूर है। है न मन्जुलिके ? बोलो।

तन्वी—(*पुनः स्थिर होने का प्रयास करती हुई*) युद्ध में नायक घायल होजाते है—मारे भी जाते हैं। आप भी जयमन्त्रधारी होने के मार्ग पर है। (*सिर नीचा कर लेती है*)

इन्द्रसेन—(*हँसकर*) अच्छा—आगे ?

तन्वी—(*निस्तार का कोई भी मार्ग न पाकर*) उदयगिरि से इस जनपद के विकट जङ्गलो को कूदती–फांदती चली आई। नागी होकर वैसी भीख मागना अशुभ है, परन्तु समर क्षेत्र के एक चित्र ने विवश करके उस याचना को कण्ठगत कर दिया और मै विह्वल होगई। अब संकोच ने गले को दबा दिया है। (*नीचा सिर किये हुये मुस्कराता है*)

इन्द्रसेन—देश और धर्म को हानि पहुँचाने वाले दान को छोड़कर जो कुछ मागोगी यथा सामर्थ्य दूंगा। तुम नहीं जानती तुम्हारी कला से

मैने कितनी प्रेरणा पाई है। उसने मेरे जीवन को चमत्कार और विनोद का अङ्ग बना दिया है। मांगो सुन्दरी मैं दूंगा।

तन्वी—(*संयत होकर परन्तु कम्पित स्वर में*) जो कुछ मैं मागूंगी उससे देश को कोई हानि नहीं पहुँचेगी, क्यों कि आर्य, मेरा भी वही देश है जो आपका है। धर्म की गति मैं नहीं जानती। आप पण्डित और शूर—दोनों—है।

इन्द्रसेन—मञ्जुलिके, तुमको हँसते हुये ही देखने का मुझको अभ्यास है, इसलिये खिन्नता को त्याग कर, अपनी मञ्जुल मुस्कान में बात करो। आज से तुमको उस मधुरस्मित के कारण मञ्जुली कहा करूँगा।

(*तन्वी सयत हो गई है। नीचा सिर थोड़ा सा ऊँचा करके मुस्कराती है। ग्रीवा अंशतः तिरछी करती है। उसके माथे पर एक रेखा पड़ जाती है। खांसती है फिर निरुद्ध सांस झटके के साथ फेक कर एक क्षण रुक जाती है।*)

तन्वी—साहस नहीं कर पा रही हूं, देव। मुझको अनुमति दीजिये, जाऊँ। फिर कभी कहूंगी।

(*वह गमनोद्यत होता है। इन्द्रसेन आड़े आ जाता है।*)

इन्द्रसेन—टाल नहीं सकोगी, मञ्जुली। दुर्बोध को सुबोध बनाने का यही क्षण है। कह नहीं सकता फिर कब इतना समय मिलेगा। प्रसङ्ग को इस प्रकार अधूरा छोड़ कर नहीं जाने पाओगी।

तन्वी—(*निश्चय के स्वर में*) देव, मैं कुमारी हूं। कभी किसी से प्रेम नहीं किया—(*यकायक चुप हो जाता है।*)

(*इन्द्रसेन व्यग्र सा होकर तन जाता है और फिर झुक जाता है।*)

इन्द्रसेन—(*मुस्कराता हुआ*) कहो, मञ्जुली कहो, प्रस्तावना तो मनोहर है।

तन्वी—(*गर्दन नीचे किये हुये*) देव, आपके प्रेम की भीख मांगती हूँ। (*वह हिल जाती है*)

इन्द्रसेन—मञ्जुली, तुम भीख माग रही हो या बरदान दे रही हो!

तन्वी—देव, अब मुझको जाने दीजिये।

इन्द्रसेन—देवि, मैने जब उस रात उदयगिरि की गुहा में तुमको देखा था, तभी मेरे हृदय मे मन्जुलता समा गई थी। परन्तु मुझको मोह कभी नहीं हुआ। मै तुम्हे प्रेम करता हू यह बात मै क्यों छिपाऊँ? मै तुम्हारे साथ बिवाह करके समानपद दूंगा। मञ्जुली मस्तक ऊँचा करो। मुझको अपने सुन्दर नेत्रों और मधुर स्मितों को देखने दो। वे तुम्हारी निधि हैं और मेरी भी। (*मन्जुली नीचा सिर किये हुये ही मुस्कराती है*) मञ्जुली, एक बात आश्चर्य है। जब तक देश स्वतन्त्र नहीं हुआ हमारा प्रणय विवाह की सीमा पर नहीं पहुँच सकेगा।

तन्वी—दान दे चुके हो देव, मै और क्या कहूँ?

इन्द्रसेन—(*हँसकर, उमंग के साथ*) मन्जुली, अरे, दान दो प्रकार के होते हैं—एक सत्वर, दूसरा स्थगित। इस दान को क्या कहू?

तन्वी—(*हँसकर*) अधः पर! त्रिशंकु!!

इन्द्रसेन—(*हँसते हुये*) आओ मन्जुली, आओ देवी। मेरी बाहें तुम्हारा आवाहन कर रही हैं।

(*तन्वी के मुख पर लाली दौड़ दौड जा रही है।*)

तन्वी—यह भी अधः पर अथवा स्थगित रहेगा, देव, क्योंकि यह प्रणय की सीमा के बाहर है, यद्यपि 'विवाह की सीमा' के भीतर।

(*जाने लिये उद्यत होती है*)

इन्द्रसेन—(*हँसता हुआ संयत स्वर में*) ठीक कहती हो मन्जुली ठीक कहती हो। ऐसा ही होगा। विश्वास रक्खो। थोड़ा सा ठहरो।

(*तन्वी आंख उठा कर इन्द्रसेन को देखती है मानो उसका सम्पूर्ण चित्र अपनी पलकों के भीतर भर लेना चाहती हो। आंख नीची कर लेती है।*)

तन्वी—अब मै निवास स्थान को जाऊँ ? एक निवेदन और है । यह देश और धर्म किसी के भी प्रतिकूल नहीं है ।

(मन्जुली हँसती है । उसके मोती जैसे दात चमक जाते हैं ।)

इन्द्रसेन—*(हँसकर)* कहो, मन्जुली, प्रेम की साकार प्रतिमा संकोच मत करो ।

तन्वी—आगे मै जनता मे नृत्यगान नहीं करूंगी । आपके मनोरन्जन के लिये आपके ही सामने कर सकती हूँ, आपके ही निकट रह कर ।

इन्द्रसेन—*(कुछ सोचकर)* जनता कुछ अपवाद करेगी । *(फिर दृढ़ता के साथ)* परन्तु इसमें जनता का क्या ? यह तो मेरे निजी जीवन से सम्बन्ध रखने वाला प्रसङ्ग है । देखा जायगा । जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा ।

(नमस्कार करके तन्वी बाहर के कक्ष में जाती है । इन्द्रसेन घर के दूसरे भीतर कक्ष मे चला जाता है । वकुल पसीने में डूबा सा प्रांगण मे आता है । उसका चेहरा पीला सा पड़ गया है ।)

वकुल—चलो श्रीकण्ठ, घर चलें । क्या कुछ अस्वस्थ हो ।

वकुल—नहीं मन्जुल—जुलिका—ऐसा ही कुछ ...अच्छा, चलो । बाध के किसी वृक्ष के नीचे बैठेंगे । वहा खुली वायु मिलेगी ।

(तन्वी उसकी व्यस्तता को देखकर भी मुस्कराती रहती है, परन्तु वकुल उस मुस्कराहट को नहीं देख पाता । दोनो भवन से बाहर जाते हैं ।)

चौथा दृश्य

[स्थान—दुग्वकुप्य ग्राम के पास की पहाड़ी जङ्गल । समय सन्ध्या के पूर्व । तन्वी और वकुल आते है ।)

तन्वी—यहा कितने मन्दिर और मूर्तिया है ?

तन्वी—इनको खंडित करने के लिये अभी शक और हूण नहीं आ पाये हैं ।

तन्वी—(*अनसुनी सी करके*) अब स्वस्थ हो ? क्या हो गया था तुमको ?

वकुल—मैं स्वस्थ और संयत हूँ। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि मानव के हृदय में मानव होता है ?

तन्वी—तुम भूलते हो। (*व्यङ्ग के स्वर में*) तुमने एक बार कहा था, मानव के भीतर मानव हृदय होता है।

वकुल—यही सही। आज मैंने अपने कानों जो कुछ सुना है क्या वह सबका सब अभिनय ही था

तन्वी—तुम क्या समझे ?

वकुल—यही मानव के हृदय के भीतर का मानव बोला।

तन्वी—और क्या पत्थर के हृदय के भीतर का पत्थर बोलता ?

वकुल—(*आंखों में आंसू आजाते हैं*) क्षमा करो देवी, अब कुछ नहीं कहूंगा।

तन्वी—देखो वकुल, अनमने मत होओ। मूर्खता मत करो। सोचो समझो हम लोग किस परिस्थिति में है। पिताजी के आहत होने का समाचार सुनकर मै विचलित होगई। और किसी प्रकार से निर्वाह होता हुआ न देखकर मैंने प्रेम की बात कही। प्रकट हो जाय कि हम लोग उपवदात के गुप्तचर हैं तो एक क्षण में मार डाले जायेंगे। तुमको मेरे अभिनय पर प्रसन्न होना चाहिये न कि खिन्न।

वकुल—(*कुछ खिन्न कर*) मुझको सान्त्वना मिली, परन्तु उस अभिनय की दो एक बातें समझ में नहीं आईं, इसलिये पूछना चाहता हूँ।

तन्वी—पूछो श्री कण्ठ।

वकुल—तुम्हारे चेहरे पर लाली क्यों दौड़ दौड़ जाती थी ?

तन्वी—तुम देख रहे थे क्या। अस्तु। चेहरे पर लाली दौड़ा ले आना बड़े सफल अभिनय का अङ्ग है। और पूछो।

वकुल—आलिंगन क्यों नहीं दिया ? इससे तो इन्द्रसेन का विश्वास और भी पक्का हो जाता।

तन्वी—आलिंगन क्यों नहीं दिया, फिर पूछते, प्रणय में एक पग और आगे क्यों नहीं बढ़ी ? तुम भी क्या मूर्ख हो ! इससे तो मैंने अपने छल की सचाई को और भी पुष्ट किया बुद्धि के ठेकेदार।

वकुल—अच्छा, अच्छा। चलते समय इन्द्रसेन को बड़ी बड़ी आखो क्यो देखा ?

तन्वी—क्योकि वे महान हैं, जीवन मे ऐसा पुरुष कभी नहीं देखा। मै उनको प्राणपण से चाहती हूं। बस

वकुल—(*हँसकर और नीचे पड़े हुये घास के तिनके को उठा उठाकर तोडते हुये*) नहीं मञ्जुलिका, मै ऐसा नहीं समझता। वास्तव मे वह सब अभिनय था, परन्तु न जाने क्यो उस बात चीत और स्थिति के सम्पूर्ण चित्र की एक साथ कल्पना करते ही मन झझट मे पड़ जाता है और शंकायें खड़ी हो जाती है। यदि वास्तव मे तुम प्रेम के जाल मे फस गई तो हमारा कार्य पूर्णतयः धूल मे मिल जायगा। एक समाधान अवश्य मिलता है। तुम प्रेम करने मे असमर्थ हो। भगवान ने तुमको प्रेम करने के लिये उत्पन्न ही नहीं किया है। इसलिये भय नहीं लगता। अब शीघ्र ही अवसर पाकर इन्द्रसेन का वध, शस्त्र या विष द्वारा करके यहा से चल देना चाहिये। (*तन्वी की भोहे सिमट उठती है। वकुल यह भाव नही देखपाता।*)

तन्वी—(*संयत होकर*) जो कुछ करेंगे सावधानी के साथ करेंगे मैने इन्द्रसेन के साथ प्रणय इसीलिये किया है। स्मरण है मै महाक्षत्रप के सामने कुछ प्रण करके चली थी। मै ही उस प्रण को कृतकार्य करूंगी मै जो कुछ कहूँ केवल उतनी ही सहायता करते रहना।

वकुल—मैं इन्द्रसेन को किसी प्रकार भी नही छोड़ूँगा।

तन्वी—चलो अब घर चलें।

वकुल—चलो। आगे की योजना पर वही सोच विचार करेंगे

तन्वी—श्रीकण्ठ, इन्द्रसेन सचमुच महान है। (*प्रस्थान*)

चौथा अंक

पहला दृश्य

[स्थान— त्रिपुरी के निकट नर्मदा का कांठा । जङ्गल, पहाड़ और घने वृक्षों के बीच में समभूमि । उस समभूमि में इन्द्रसेन, रामचंन्द्रनाग तथा आंध्रों और काण्डवों की सम्मिलित सेनाओं की छावनी अनेक निवेशों में । एक बड़े निवेश पर हंस–मयूर की छोटी छोटी पताकायें है । बड़े निवेश के एक भाग में रामचंद्रनाग, दूसरे भाग में इन्द्रसेन और तीसरे में वकुल तथा तन्वी हैं । इस निवेश के सब भागों के द्वार वृत्ताकार में एक ही ओर हैं । छावनी में व्यवस्था है । निवेश के द्वारों पर पट नहीं पड़े हैं । समय संध्या के पूर्व । ऋतु ग्रीष्म ।]

(रामचंद नाग और इन्द्रसेन निवेश के बाहर आते हैं । वकुल अपने द्वार की ओट में भीतर खड़ा है ।)

इन्द्रसेन—आर्य, पुरानी प्रथाओं और रूढ़ियों के भ्रम को सत्य का रूप दे देने से वे निर्बल नहीं पड़ती प्रत्युत उनको सजीव बने रहने का हठ और हानि पहुंचाने का बल और अधिक प्राप्त हो जाता है । इस वन में बड़े बड़े विषधर सर्प हैं । उनको मारे जाने का निषेध नहीं करना चाहिये था ।

रामचन्द्र—सर्प, रक्षा और आक्रमण का प्रतीक है। हमारे यहा उसकी पूजा रूढ,हो गई है। अतएव निषेध कर दिया।

इन्द्रसेन—इसको खंडित करना पडेगा।

रामचन्द्र—देश में व्यवस्था स्थापित होने के उपरान्त। वैसे भी हमारी सेना मे बौद्ध और जैन विचारों के कुछ लोग हैं। वे कट्टर शक विपक्षी हैं। उसका भी ध्यान रखना पड़ा।

इन्द्रसेन—शकों को पराजित करने के उपरान्त बहुत काम करना पड़ेगा। हिंसा की भ्रम पूर्ण धारणाओं का निवारण दृढ़ता के साथ करना होगा। जनता का एक बड़ा अंश कपोतवृत्ति हो गया है, उसका उबारना प्रथम कर्तव्य होगा।

रामचन्द्र—ग्राम का पञ्चायती संगठन पहले, क्योंकि शकों ने गण-तन्त्र की परम्पराओं का उन्मूलन कर डाला है।

(सुनन्दा का एक सैनिक के साथ प्रवेश। वह हीन क्षीण सी दिखती है।)

सैनिक—देव, ये लोग आपसे कुछ कहना चाहते हैं। नाम नहीं बतलाया इसलिये मैं साथ ले आया।

इन्द्रसेन—*(सुनन्दा को निकट से देखकर)* ऐं! क्या मैं पहिचानने में भूल कर रहा हू? सैनिक तुम अपने काम पर जाओ।

(सैनिक का प्रस्थान)

सुनन्दा—*(क्षीण स्वर में)* आर्य ने पहिचानने में भूल नहीं की।

इन्द्रसेन—देवी, मै आपको देखकर दुखी हुआ। आप कष्ट में जान पड़ती हैं। देवी सुनन्दा, आप मेरी अतिथि हुईं।

सुनन्दा—अनुग्रहीत हुई देव।

इन्द्रसेन—साहस नहीं होता देवी, पर क्या मैं पूछ सकता हूँ राजन्य कहा हैं?

(सुनन्दा की आंखो में आंसू आ जाते है।)

सुनन्दा—(सूखे रूखे स्वर में) ये यहीं आ रहे थे देव। मार्ग में उनको एक सिंह ने—(सिसकने लगती है।)

इन्द्रसेन—ओह!!! देवी, मै इस समाचार को सुनकर बहुत सन्तप्त हो रहा हूँ। कब हुई यह दुर्घटना?

सुनन्दा—आज एक मास हो गया है। शकों की सेना उमड़ी चली आ रही है। उससे किनारा काटने के लिये घोर जंगल मे होकर चलना पड़ा। उनको हम लोगों के बीच मे से सिंह उठा ले गया। हाय! मै न मरी!!

इन्द्रसेन—शकों की सेना उमड़ी चली आ रही है! हुँ। वे लोग जन धन का विनाश करते चले आ रहे होंगे! हुँ। देवी, मेरे लिये क्या आज्ञा है?

सुनन्दा—मेरे भाई कालकाचार्य को आप जानते होंगे।

इन्द्रसेन—(सांस छोड़कर) जानता हूँ देवी। कौन नहीं जानता उनको! (नीचा सिर करके) मेरे लिये आज्ञा देवी?

सुनन्दा—(काँपते हुये स्वर में) मुझको उनके पास भेज दीजिये। मेरे लिये वे व्यग्र होंगे।

इन्द्रसेन—(सिर को थोड़ा ऊँचा करके) वे तो शकों की इसी उमड़ती हुई सेना के साथ होंगे।

सुनन्दा—(दृढ़ स्वर में) नहीं हैं, आर्य। मुझको समाचार मिला है, वे कहीं सुराष्ट्र में हैं।

इन्द्रसेन—देवी, इस युद्ध के समाप्त होते ही आज्ञा का पालन करूंगा। तब तक आप शिविर में विश्राम करेंगे। और कोई आज्ञा?

सुनन्दा—मै उपकृत हुई आर्य। कहां जाऊँ?

इन्द्रसेन—इस सामने वाले निवेश में देवी। वहा विश्राम की सब सामग्री मिल जायगी।

(सुनन्दा अङ्गरक्षक के साथ निर्देश में जाती है। अङ्गरक्षक उसको पहुँचाकर लौट आता है, और चला जाता है। इन्द्रसेन का भी प्रस्थान। एक दूसरे स्थान से वकुल और तन्वी धीरे धीरे बात करते हुये आते हैं। वकुल सैनिक वेश में, सशस्त्र है, तन्वी गर्मी के कारण कंचुकी नहीं पहने है। केवल साड़ी पहने है।)

वकुल—अब समय आगया है मन्जुली।

तन्वी—सो तो मैं भी देख रही हूं।

वकुल—महाक्षत्रप की सेना आ रही है। या तो निशा में ही युद्ध होगा या प्रातः के पूर्व ही निद्रा का राज्य होने पर, कपड़े की भीत के नीचे सरक कर उस भाग में जाऊँगा और इन्द्रसेन तथा रामचन्द्र नाग का अन्त करूँगा। उनके मारे जाने का समाचार फैलते ही आर्य सेना हड़बड़ा जायगी और अपनी सेना की विजय होगी। मैं तुमको लेकर महाक्षत्रप की सेना में जा मिलूँगा। वन-पर्वत निकट ही लगे हैं। मैंने अपने पास एक विष हीन-सर्प छिपा रक्खा है। यदि बिफल हुआ तो उसको छुटका दूँगा और चिल्ला उठूंगा कि साँप को पकड़ने के लिये घुस आया, क्योंकि सर्पों के मारने का प्रतिषेध है।

(वध की बात सुनते ही तन्वी की आँख की एक कोर कुछ संकुचित हो जाती है।)

तन्वी—यदि हमारी सेना आज या कल भी न आई तो आर्य सेना का नायकत्व कोई न कोई करेगा ही। पहले यह निश्चय करलो कि शक-सेना समीप आगई है। यदि नहीं आगई है तो किसी और अवसर के लिये इस योजना को टाल दो। मुझको विचार कर लेने दो, क्योंकि तुमने पहले कभी नहीं बतलाया। अभी अकस्मात कहा।

वकुल—मन में कुछ तो मेरे पहले से ही थी, पर इसी रात काम कर डालने के लिये मैं एक विशेष कारणवश उद्यत हुआ हूं।

तन्वी—यह विशेष कारण क्या है श्रीकण्ठ?

वकुल—यदि इनको मार-मूर कर हम यहा से नहीं भागते हैं तो कल हम दोनों मार डाले जायगे।

तन्वी—(*बिना किसी भय के*) क्यों ?

वकुल—अभी अभी सुनन्दा यहा आई है। (*उसका नाम सुनकर तन्वी चौक पडती है*) बिलकुल थकी मादी और अस्त-व्यस्त अवस्था में। वह यहा अतिथि है। जब पूरी नीद लेकर प्रातःकाल उठेगी तब तक श्रीकण्ठ बकुल हो जायगा और मन्जुलिका तन्वी, क्योंकि सुनन्दा के साथ मैंने कालकाचार्य के विद्यापीठ मे पढ़ा है। आगया समझ मे देवी ?

तन्वी—समझ गई।

वकुल—अब क्या करती हो ?

तन्वी—(*एक क्षण सोच कर*) यह कुछ मत करो। तुम्हारी योजना में पागलपन अधिक है, विवेक कम। तुम इसी समय छावनी के बाहर चले जाओ। इस प्रकार बच जाओगे। मै अकेली रहकर अपने ढङ्ग से कुछ करूँगी तुम शक सेना मे जा मिलो।

वकुल—मेरा निश्चय अटल है। मैं आज उन दोनों को मारूँगा। (*तन्वी कुछ सोचती है*) मन्जुली, तुम कितनी सुन्दर हो और आज मै कितना मुग्ध हूँ, यह मैं ही जानता हूँ। मैं जानता हूँ कदाचित् मैं इस प्रयत्न में मारा जाऊँ। परन्तु मार कर मरूँगा। मरने से पहले क्या मुझको अपने प्रेम का आशीर्वाद न दोगी मेरी मन्जुली ? (*तन्वी के होंट सट जाते है। कुछ नहीं बोलती है। अंधेरा बढ़ता चला जाता है। नर्मदा के जल-प्रपात का शब्द सुनाई पड़ता है।*)

तन्वी—आज तुमको क्या होगया है। आपे से बाहर हुये जा रहे हो ! जियोगे और जीवन मे बहुत कुछ पाओगे। अभी तुमने संसार का देखा ही क्या है ?

वकुल—परन्तु तुम उस आशीर्वाद को न दोगी ?

तन्वी—मैं तुम्हें स्नेह करती हूँ। इसलिये अनुरोध करती हू कि चुपचाप चले जाओ।

वकुल—स्नेह और प्रेम मे अन्तर है तन "वी"' मन्जुली एक बार तुमको हृदय से लगा लेता और मर जाता, तो अन्तिम साध मिट जाती।

तन्वी—क्या बकते हो ? श्रीकण्ठ ! विवेक से काम लो। मैं तुम्हारा नियन्त्रण करूँगी।

वकुल—मै इस नियत्रण का अर्थ जानता हूँ मन्जुली। बहुत दिनों से जानता हूँ।

तन्वी—क्या जानते हो, मुझको नहीं पूछना है। मैं केवल यह प्रार्थना करती हू कि शात रहो और उस कार्य को मत करो।

वकुल—क्योंकि, क्योंकि—अस्तु। मुझको निश्चय होगया है कि तुम जान बूझ कर इन्द्रसेन के मारे जाने में वाधा डाल रही हो। क्योंकि मैं तुमको प्यारा नहीं हूँ, वह तुमको प्यारा है। तुम वैष्णवी और हंसमयूरी हो गई हो।

तन्वी—चुप, चुप वकुल। भीतें कपडे की हैं, पत्थर, ईंट चूने की नहीं। मै सोता हूँ। तुमको जो अच्छा लगे करो। अब मैं कोई बाधा नहीं डालूँगी।

(तन्वी अपने निवेश में जा लेटती है। अँधेरा बढ़ता जाता है। छावनी में पहरे वालो के अतरिक्त धीरे धीरे सब निद्रावश होते है। निवेश के पास वाले भाग में इन्द्रसेन इत्यादि सो जाते है। उसी निवेश के एक छोटे से कक्ष में सुनन्दा है। उसको नींद नहीं आ रही है। तन्वी को सोया हुआ समझ कर वकुल उठता है और उसके पास जाता है।)

वकुल—*(स्वगत)* जगत की अनुपम सुन्दरी तन्वी, इस जन्म मे तुम्हारा प्यार न पा सका ! अस्तु। *(उसके अध खुले माथे के निकट अपने होठ ले जाता है)* अब मै अपना काम करूँ। *(कनात के पास जाकर कान लगाता है फिर लौटता है)* इसको जगा कर एक बार हृदय से लगालूँ ? नहीं, उतना ही बहुत है। अच्छा एक बार और

(अपने होठ उसके माथे के निकट ले जाता है, और जाता है । वह कनात के नीचे के भाग मे होकर सरकता है, जहा वह ढीला है । तन्वी तुरन्त बिछौने से उठती है । अपनी साड़ी का कछोटा कसती है । उसकी दोनो बाहे उघर जाती है । वह बिलकुल चुपचाप वकुल के पीछे पीछे जाती है । कनात की ढील में होकर वह आधी से अधिक सरक जाती है और पेट के बल उकड़ूँ पडी रहती है । वकुल एक हाथ मे सांप को पकड़े हुये है और दूसरे में नङ्गा खड्ग लिये देख रहा है कि इन्द्रसेन किस स्थान पर सो रहा है । इन्द्रसेन का पर्यंक कनात के उस भाग के पास ही है जहां होकर वह सरक आया था । परन्तु पहिचान न सकने के कारण आगे बढ जाता है और फिर लौट पडता है । निवेश में कुछ बत्तियो का मन्द प्रकाश । वकुल सांप को छुटका कर इन्द्रसेन के सिर पर भर पूर वार करता है । तन्वी उसी समय उछल कर उसके कंधे को पकड़ कर पीछे खींचती है । इन्द्रसेन का सिर तो बच जाता है, परन्तु वार कंधे पर खिच जाता है और वह आहत हो जाता है । उसके मुह से ओह ! निकलता है । शब्द मे सङ्कट को अवगत कर सुनन्दा दौड़ती है, रामचंद्र नाग जाग उठता है और दण्डपाशिक दण्डदीप लिये हुये निवेश के भीतर घुस आते है। सांप को देख कर दण्डपाशिक अकचका जाते है, सुनन्दा वकुल को पहिचान कर चीत्कार करके बैठ जाती है । भागने की सुविधा समझ कर वकुल छलांग मार कर निकल जाने का प्रयत्न करता है, परन्तु तन्वी उस को एक हाथ से लिपट कर छेड़े रहती है और दूसरे से उसकी तलवार छीनने का प्रयत्न करती है । रामचंद्र अपने सिरहाने से खड्ग खींच कर वकुल पर झपटता है । दण्डपाशिक दौड़ पड़ते है और वकुल को नङ्गी तलवारों के घेरे में कर लेते हैं । इन्द्रसेन अचेत नहीं है । निवेश में और भी दण्डदीप आ जाते हैं । वकुल अपना खड्ग फेंक देता है)

सुनन्दा—वकुल ! वकुल !! यह क्या !!!

रामचन्द्र—उषवदात का गुप्तचर वकुल !

सुनन्दा—उषवदात का गुप्तचर !!

इन्द्रसेन—(*तकिये से टिककर*) ओह ! यह श्रीकंठ वकुल है ! मञ्जुश्री तुम उसको छोड़ दो, अब वह नहीं भाग सकता। यहीं आकर बैठ जाओ। तुम हाफ रही हो, पसीने मे भीग गई हो ? (*तन्वी उसके पास जाकर चिन्ता के साथ घाव की परीक्षा करती है।*) घाव बहुत साधारण है देवी। अभी पट्टी बँधी जाती है। (*एक सैनिक पट्टी लाता है।*)

तन्वी—(*व्यग्र और टूटे स्वर मे*) देव, उसका खड्ग कहीं विषाक्त न हो। वैद्य से विष के प्रतिकार की औषधि मगवाईये। शीघ्र देव, शीघ्र।

वकुल—(*फटे स्वर में*) तन्वी ! जाति द्रोहिणी अभागिन !!

रामचन्द्र—तन्वी कौन ?

इन्द्रसेन—तन्वी ! कौन तन्वी ?

(*इन्द्रसेन की आंख तन्वी के उस उघड़े हुये बाहु पर जाती है जहां खरोष्टी लिपि में लिखा है, महाक्षत्रप भूमक की पुत्री तन्वी इन्द्रसेन खरोष्टी लिपि जनता है। पढ़ लेता है और पढ कर चुप हो जाता है।*)

वकुल—मै बतलाता हूँ कौन तन्वी। शकों की घातक, नाचने और गाने वाली निर्मम शिला—तन्वी।

(*तन्वी और सुनन्दा एक दूसरे का एकाध क्षण निरीक्षण करती हैं*)

वकुल—कैसी दो नारिया यहा एकत्र हुई हैं ! सुनन्दा और तन्वी !! एक ने उत्तमभद्रों का विनाश करवाया ! दूसरी ने शकों का !!

इन्द्रसेन—सावधान नीच ! आगे मुँह मत खोलना !!

रामचन्द्र—सावधान ! वकुल !! (*खड्ग उबारता है*)

इन्द्रसेन—आर्य क्या करते हो।

सुनन्दा—मैं इसके प्राणों की भिक्षा मागती हूँ ।

(तन्वी सुनन्दा के पास जाकर बैठने के लिये मुडती है । इन्द्रसेन दूसरे बाहु के गुदने वाले लेख को भी पढ़ लेता है—'आचार्यकालक की शिष्या तन्वी ।' वैद्य आता है और औषधोपचार पट्टी इत्यादि के उपरात चला जाता है । उसी समय शकों की सेना के आने का शब्द होता है । दण्डदीप जलाये हुये हैं और घोडों पर सवार । तुरत युद्ध हो उठता है । आकस्मिक आक्रमण के कारण आर्य सेना पहले भागती है, फिर शीघ्र सम्हल कर लड़ती है । इन्द्रसेन खडा हो जाता है)

इन्द्रसेन—वकुल को कठोर पहरे में रक्खो । ले जाओ ।*(वकुल को सैनिक बाँध कर ले जाते है)* नागदेव, सभालिये सेना को मै आता हू ।

(कवच इत्यादि पहिन कर रामचंद्र नाग का प्रस्थान । सुनन्दा अपने डेरे में जाती है । इन्द्रसेन कवच पहिनने का प्रयास करता है)

तन्वी—देव, आप यह क्या कर रहे हैं ? शरीर से इतना रक्त निकल चुका है ! कन्धे में घाव है, आप लड़ने जा रहे हैं !! नहीं जा सकेंगे ।

(इन्द्रसेन पलंग पर बैठ जाता है)

इन्द्रसेन—राजकुमारी—

तन्वी—राजकुमारी कौन, देव ?

इन्द्रसेन—राजकुमारी तन्वी और हम लोगों की मन्जुलिका महा - क्षत्रप भूमक की पुत्री, आचार्य कालक की शिष्या । मै खरोष्टी लिख-पढ़ सकता हूं और सस्कृत तो सहज ही है ।

तन्वी--*(मुस्कराकर)* इससे मेरे हठ को बाधा नहीं पहुँचती ।

इन्द्रसेन—*(खड़ा होकर)* राजकुमारी मन्जुली, मुझको जाने दो, हंसमयूर के प्रतिनिधि को हंसमयूर के ध्वज के नीचे जाने दो ! क्या तुम

चाहती हो कि आर्य हार जायं? आर्य संस्कृति का निधन हो जाय? रणक्षेत्र में मेरे पहुँच जाने से आर्य सेना को दुगुना बल मिल जायगा और राजा रामचन्द्र को चौगुना उत्साह। हमारी सेना में कदाचित् कोई, यह झूठा समाचार फैला दे कि मेरा वध हो गया है, तो आर्य सेना की उमंगे शिथिल पड़ जायंगी। आओ कवच पहिनने मे सहायता करो देवी।

(तन्वी कवच इत्यादि पहिनने में सहायता करती है । उसकी आंखो मे आंसू आ जाते है)

इन्द्रसेन—आज एक भीख मैं तुमसे मागता हूँ।

तन्वी—क्या है देव?

इन्द्रसेन—युद्ध से मेरे लौटने तक सुनन्दा की रक्षा करोगी?

तन्वी—वचन देती हूँ आर्य।

(इन्द्रसेन बाहर जाता है। तुरंत 'हंस-मयूर की जय' का तुमुल नाद होता है। तन्वी सुनन्दा वाले डेरे मे जाती है। घमासान युद्ध रात भर होता है। प्रातःकाल होने के समय पुरंदर कपालिको की सेना लिये हुये आ जाता हे। शको के पैर पहले ही उखड़ चुके थे, अब वे बुरी तरह घेरे जाकर मारे जाते है। बहुत कम शक बचते हैं। उषवदात घायल होकर गिरता है और वन्दी कर लिया जाता है। युद्ध स्थगित होता है। इन्द्रसेन, रामचन्द्र नाग, और पुरंदर, हंसमयूर की जय' मालवगण, आध्रो, नाग और कारवो की जय कहते हुये बड़े तम्बू के सामने आते है। सुनंदा तम्बू के भीतर थाल मे धान, फूल और आरती सजाये खड़ी है। उस के पीछे तन्वी उछल उछल, झांक झाक कर देखती है। वह बहुत उदास है। इन्द्रसेन को और भी घायल देखकर वह करुणा से भर जाती है।)

तन्वी—(सुनंदा से) दीदी रानी, घायलो को खुली वायु मे नहीं रहना चाहिये।

सुनन्दा—और तो कोई घायल नहीं दिखता—नलपुर गणनायक कुछ और घाव खा गये हैं। (*दौवारिक को संकेत से बुलाकर*) वैद्य को लाओ।

(*दौवारिक जाता है।*)

तन्वी—मैं भीतर चली जाऊँगी (*भीतर चली जाती है, वे तीनों सुनंदा के समीप आते हैं। सुनंदा आरती का थाल लिये हुये पीछे हट जाती है*)

पुरन्दर—देवी, हम लोगो ने आरती के दर्शन कर लिये, बस हो गया। चाहो तो इसको छिड़क दो वह शुभ है।

रामचन्द्र नाग—देव इन्द्रसेन की आरती उतारी जायगी।

तन्वी—(*आड़ में सुनंदा से*) आरती नहीं, औषधोपचार दीदी रानी। (*उसी समय वैद्य आकर इन्द्रसेन का उपचार करता है।*)

इन्द्रसेन—मेरी आरती। मैं तो देश का एक छोटा सा सेवक हूँ। आरती उतारी जाय तो हंस-मयूर की, आदर दिया जाय तो उस देवी को जिसने मेरे प्राण बचाये। पुरुषों की आरती नहीं उतारी जानी चाहिये।

(*हंस-मयूर पताका सामने लाई जाती है, उसकी आरती उतारी जाती है। तन्वी आ जाती है। तन्वी और सुनंदा सबके ऊपर धान छिटकती है, और फूल बरसाती हैं—इन्द्रसेन पर तन्वी विशेषकर। इसके उपरांत कुछ घायल शक नायक निवेश के सामने लाये जाते हैं वे पहिचान में नहीं आते। उपवदात को पहिचान कर तन्वी सुनंदा को संकेत करती है और इन्द्रसेन के पीछे खड़ी हो जाती है।*)

तन्वी—(*सुनंदा से*) महाक्षत्रप उषवदात यह है।

(*इन्द्रसेन सुन लेता है।*)

इन्द्रसेन—उषवदात, आप पहिचान लिये गये हैं। अपने घोर पापों और अपराधों का क्या उत्तर है आपके पास?

उषवदात—कौन कहता है मैं उषवदात हूँ ? मैं उषवदात नहीं हूँ।

तन्वी—(*सामने आकर*) मैं कहती हूँ तुम उषवदात हो। मैं कहती हूँ।

उषवदात—कौन, तन्वी ! अभागिन राजकुमारी, क्या वैष्णव हो गई है ?

तन्वी—कुछ भी हो गई, परन्तु मैंने पाप नहीं किये।

(*पीछे हट जाती है।*)

पुरन्दर—तुरन्त इन शकों के टुकड़े करके कुत्तों को डाल दो। ओह उषवदात यह है।

रामचन्द्र—हां। अवश्य।

इन्द्रसेन—नहीं, नायको ! हम हंस-मयूर ध्वज को बंदियों के रक्त से कलुषित नहीं कर सकते। आर्य-धर्म के प्रतिकूल है। हमारी संस्कृति नतोन्मुख हो जायगी।

पुरन्दर—तब इनको उज्जैन ले चलकर आजन्म कारावास दिया जाय।

इन्द्रसेन—यह भी नहीं होगा आचार्य। उज्जैन में जो क्रूर कर्म इन लोगों ने किये हैं उससे उज्जैन निवासी बहुत क्रुद्ध हैं। वे इनको हमारे हाथ से छीन कर मार डालेंगे। औषधोपचार करने के बाद इनको विदिशा में बन्द रक्खा जाय।

उषवदात—ओह ! तन्वी तन्वी, भूमक का नाम लजाने वाली शक कन्या ! शक द्रोहिणी !!

तन्वी—(*फिर सामने आकर*) हां शक कन्या। और अब आर्य नारी।

उपवदात—अभागिन !

इन्द्रसेन—ले जाओ इन लोगों को।

(*मरहम-पट्टी के लिये वे लोग हटा दिये जाते हैं। तन्वी अपने निवेश में चली जाती है। फिर सबका प्रस्थान।*)

दूसरा दृश्य

(स्थान—भृगुघाट के निकट का जङ्गल । इन्द्रसेन का प्रवेश । वह पट्टियां बांधे है । पीछे से तन्वी आती है, उसके हाथ में पुष्पमाला है ।)

तन्वी—देव, इसको गले में पहिनाने दीजिये । *(तन्वी की आंखों में आंसू आजाते हैं । वह माला पहनाती है)*

इन्द्रसेन—मन्जुली, बहुत उदास हो । चिन्तित मत होओ । मैं स्वस्थ हो जाऊँगा । *(तन्वी बिलख बिलख कर रोती है)* क्या बात है मन्जुली ?

तन्वी—*(कुछ संयत होकर)* देव, मैं अब स्वाधीन नहीं हूं ।

इन्द्रसेन—तुम स्वाधीन हो देवी । जहां चाहो वहां अत्यन्त आदर के साथ भेजी जा सकती हो । आर्य जनपद तुम्हारे अनुग्रह को कभी नहीं भूलेंगे ।

(मंजुली तिनक जाती है और आंसू पोछती है)

तन्वी—*(रूखे स्वर में)* आर्य आप बहुत निष्ठुर और कठोर हैं । विन्ध्याचल सदृश निर्मम ।

इन्द्रसेन—*(मुस्करा कर)* मैं समझा नहीं ।

तन्वी—*(यकायक हँसकर फिर तुरन्त गम्भीर होकर)* आर्य सोचते होंगे मैं केवल एक शक नर्तकी और गायिका हूँ ।

इन्द्रसेन—अपना और मेरा अपमान मत करो मन्जुली । मुझको बतलाओ तुम खिन्न क्यों हो ?

तन्वी—शकों के नाश पर मैं फूल चढ़ा रही हूं देव, और क्या कहूँ ?

इन्द्रसेन—हूं । तुम उस नाश को बचा सकती थी, देवी । किसी आर्य का विवेक तुम्हें दोषी ठहराने का साहस न करता ।

तन्वी—अर्थात् मैं अपना सर्वनाश कर लेती, क्यों निष्ठुर आर्य ?

इन्द्रसेन—(*हँसकर*) आओ मन्जुली, तुम्हारे स्पर्श से मेरे घाव स्वस्थ हो जायगे। (*तन्वी इन्द्रसेन के कन्धे पर सिर टेक देती है*) बस केवल इतना स्पर्श ?

तन्वी—(*मुस्कराकर*) दान दो प्रकार के होते हैं। एक सत्वर ! दूसरा स्थगित !! कुछ और बतलाऊँ ?

(*इन्द्रसेन खिलखिला कर हँस पडता है। तन्वी का हाथ पकड लेता है*)

इन्द्रसेन—अनङ्ग मोहिनी मन्जुली, मैं यदि वासना लिप्त होता तो कवियों की उपमाओं की तुम्हारे ऊपर वर्षा कर डालता।

तन्वी—जानते भी हैं कवियों की कुछ उपमाये कि यों ही बात बना रहे हैं देव ?

इन्द्रसेन—मन्जुली, उस दिन मैं तुम से हार गया था, आज जीत गया। आज हम लोग यहा से उज्जैन की ओर चल देंगे—

तन्वी—मैं उज्जैन नहीं जाऊँगी, देव।

इन्द्रसेन—(*सोचकर*) अच्छा। त्रिपुरी यहा पास ही है। यहा के अधिकारी मेरे घनिष्ट मित्र हैं। तुमको यहीं छोड़ जाऊँगा। व्यवस्था स्थापित करने के उपरान्त ही लौटूंगा, और भृगुघाट पर खडे होकर नर्मदा से तुम्हारे द्वारा, अपने विवाहित जीवन के लिये आशीर्वाद मागूँगा।

तन्वी—(*हँसकर*) देव, मेरे द्वारा !

इन्द्रसेन—और नहीं तो किस के द्वारा ?

तन्वी—सुनन्दा को आप साथ ले जायेंगे ?

इन्द्रसेन—हा देवी। उनको कालकाचार्य के पास भेजना है।

(*प्रस्थान*)

तीसरा दृश्य

(स्थान—उज्जैन। समय दिन। विजयी आर्य सेनायें बाजों के साथ हंस-मयूर पताकाओं को आगे लिये व्यवस्था के साथ पंक्तियां बांधे हुये नगर की सड़कों पर प्रवेश करती है। बालक, स्त्रियां और पुरुष फूलों और धान की वर्षा से सैनिकों और मार्ग को भर देते हैं। सवाद्य नृत्य और गान में संलग्न नर नारियां सैनिकों के स्वागत में आते चले जाते है। 'हंस-मयूर की जय, मालवगण की जय, महासेनापति इन्द्रसेन की जय, सातवाहन शातकर्णि की जय, इत्यादि के नाद हो रहे है। दुदुभी बजाने वाला उसी भीड़ भाड़ में आ जाता है। वह घोष करता जाता है—

"कल महाकाल के पुण्यक्षेत्र में संध्या के पूर्व महासभा होगी। महत्वपूर्ण विषयों का निर्णय होगा।"

गीत

सुमन झिलमिल रश्मियों से खिल गया,
मुदित हो परिमल कमल में हिल गया,
गगन में आभा पसर कर रम गई,
सत्य, शिव, सुंदर हमें फिर मिल गया।

चौथा दृश्य

[स्थान—उज्जैन महाकाल मन्दिर के सामने के मैदान में एक बड़े सजीले वितान और चंद्रकों के नीचे सभामण्डप। चारों ओर कदली खंभ और घट। चौकियों पर सामने इन्द्रसेन, रामचन्द्रनाग तथा पुरन्दर। दायें बायें भिन्न भिन्न गणों तथा जनपदोंके नायक और सेनापति। उसके बीच बीच में आंध्र इत्यादि प्रदेश के प्रतिनिधि बैठे हैं। समय—सन्ध्या के पूर्व। उज्जैन तथा आस पास के नरनारी सभा मण्डप में। बहुत कोलाहल हो रहा है। चाट और

आसन प्रज्ञापक नम्रता पूर्वक प्रबन्ध कर रहे है। इन्द्रसेन बोलने को खड़ा होता है। वह जनता को नमस्कार करता है। 'हंस-मयूर की जय' की तुमुल ध्वनि होती है और फिर सब लोग बिलकुल शात हो जाते हैं]

इन्द्रसेन—सभा का प्रधान नियुक्त किये जाने के लिये मै आप सब का कृतज्ञ हूँ। देवियो और बन्धुओ, तेरह वर्ष पहले की खोई हुई अपनी स्वतन्त्रता पाकर आज हम फिर अपने गण तन्त्र की स्थापना के लिये एकत्र हुये हैं। जनता की भूमि जनता को लौटाई है, क्योंकि जनता ही उसकी स्वामी है, राजा उसका स्वामी नहीं। अपने अपने वर्णो मे रहकर लोग अपना काम सुख पूर्वक करे। सबको अपने अपने धर्म का अनुसरण करने की स्वाधीनता होगी, केवल यज्ञों मे पशुओं का बलिदान न होगा जनमार्ग सुरक्षित रक्खे जावेगे जिससे कृषि और उद्योगो की उपज दूर दूर तक आ जा सके। किसी से भी बलात काम धन या अन्न नहीं लिये जावेगा। ग्राम समितियों, शिल्पियों के संघ और श्रेणिया फिर से संगठित हों। नीति और शौर्य के समन्वय से जीवन और मरण को सुन्दर बनाया जाय। (*बैंठता है*)

आन्ध्र प्रतिनिधि—आन्ध्र-राजा सात वाहन शातकर्णि अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं। उनको किसी से कुछ नहीं चाहिये। अटक भीर पड़ने पर वे केवल अपना नायकत्व में उत्तर के गणों और जनपदों को चाहते है, और नासिक की कन्दरा मे जहा शकों का अहंकारमय शिला लेख है वहा शकों के समाप्त करने के सम्बन्ध मे लेख उत्कीर्ण करना चाहते है। अनुमति के लिये प्रार्थना है। (*बैठता है*)

इन्द्रसेन—मेरी समझ में यह प्रार्थना अनुचित नहीं है। शातकर्णि ने नासिक ही के समीप सुराष्ट्र के शकों का उच्छेदन किया, और उनकी सहायता से हमने शक पुलिन्दो को मार भगाया इसलिये उनको लेख उत्कीर्ण कराने का नैसर्गिक अधिकार है। अश्वमेध के लिये भी हम लोगों

को अनुमति देनी चाहिये। मालवगण और यौधेय उनके सहयोगी हैं। उत्तमभद्रों ने भी हमारा सहयोग स्वीकार किया है और वे शातकर्णि की महानता को भी मानेंगे इसलिये भी कि कुछ जनपदो के राजा एकतन्त्री बन गये हैं या बनना चाहते हैं जिससे देश फिर संकट मे पड़ सकता है, शातकर्णि को अश्वमेध करने की अनुमति दी जानी चाहिये।

रामचन्द्र—इस सभा मे समस्त प्रदेशों के गणपति, गणपक, जनप्रमुख, विद्वान, ब्राह्मण, श्रमण श्रावक उपस्थित हैं। इनके छन्दों का संग्रह कर लिया जाय। यदि बहुमत इस पक्ष मे हो तो अनुमति दे दी जाय।

आन्ध्र प्रतिनिधि—उचित है राजन्य।

(आज्ञा प्रज्ञापक, आसन प्रज्ञापक और सभा नियोजक दो भिन्न रंगों की शलाकाओं को उपस्थित जनता में बांटते हैं। प्रत्येक छन्ददाता के हाथ मे उन भिन्न रंगों की दो दो शलाकायें दे दी जाती है)

इन्द्रसेन—जो लोग आन्ध्र-स्वराट सातवाहन, शातकर्णि को अश्वमेध यज्ञ करने की अनुमति देने के पक्ष में हों, वे लाल रंग की शलाकाये शलाका-संग्रहक को दे दें। जो इस प्रस्ताव के विरुद्ध हो वे हरे रंग की शलाकायें दे दें। इन शलाकाओं की गणना के उपरान्त बहुमत और क्षीण मत का निर्णय किया जायगा। आप अपना छन्द देने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं इस बात को दुहराने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं।

(उपस्थित जनता शलाका संग्रहक को अपनी अपनी एक एक शलाका दे देती है। संग्रह के उपरांत शलाकाओं की गणना सभा नियोजक और सभा प्रधान करते हैं। फिर बहुमत का परिणाम सुनाया जाता है)

इन्द्रसेन—सातवाहन शातकर्णि को अश्वमेध यज्ञ करने की अनुमति बहुमत द्वारा दी जाती है। (*तीन बार कहता है*)

जनता—स्वीकार है।

पुरन्दर—आज इस आनन्द की घड़ी को लाने का श्रेय किसको है? किसने इन दीर्घ वर्षों, चिन्तन और परिश्रम करके, देश को मुक्ति के दर्शन कराये? किसने उन भयावनी, घोर और प्रतिकूल परिस्थितियों में से फिर से सतयुग का स्थापित किया? किसने बिखरे हुये और ध्वस्त प्रायः आर्य जनपदों को संगठित किया?

सब के सब—(*उत्साह के साथ*) आर्य इन्द्रसेन ने।

पुरन्दर—आप ठीक कहते हैं। भगवान का कथन है—जब जब धर्म की ग्लानि होती है, मैं जनता के बीच में उभरता हूँ और जन सुख की स्थापना करता हूं। मुझ समान कापालिक को भी जिन्होंने शङ्कर का सौम्य रूप दिखलाया, उन आर्य इन्द्रसेन को आज से 'कृत' कहना चाहिये कृत अर्थात् सतयुगी।

सब—आर्य इन्द्रसेन 'कृत' की जय हो। मालवाना जय।

पुरन्दर—गर्दभिल्ल को सिंह ने खा लिया और उसकी रानी सुनन्दा अपने भाई कालकाचार्य के पास सुराष्ट्र में पहुँच गई है। कालकाचार्य ने उसका प्रायश्चित करवा के सरस्वती नाम दे दिया है—

रामचन्द्र—सरस्वती नाम तो अच्छा है। सुनन्दा से सरस्वती! परन्तु प्रायश्चित!! हुँ। फिर?

पुरन्दर—सुनन्दा अर्थात् सरस्वती फिर श्राविका होगई है। गर्दभिल्ल के पुत्र को हम उज्जैन का राजा नहीं बनाना चाहते। सरस्वती श्राविका हो जाने के कारण राज्य कर नहीं सकती। इसलिये मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आर्य इन्द्रसेन कृत को उज्जैन और मालव जनपदों का राजा नियुक्त कर दिया जाय।

रामचन्द्र—उचित है। आर्य इन्द्रसेन, गणों की स्वतन्त्रता की रक्षा प्रबलता के साथ करेंगे।

इन्द्रसेन—(*खड़े होकर और हाथ जोड़कर*) आप लोग कृपा पूर्वक मुझको जो श्रद्धा प्रदान कर रहे हैं उसके बोझ से मैं दबा जा रहा हूँ। परन्तु मालवगण सावधान, राजा बनाने की प्रथा को स्थायी कर देना बहुत हानिकारक है। राजा अपनी सन्तान को राज्य देता है। सन्तान तड़क-भड़क और बनावट की भूमि में उपजने और बढ़ने के कारण अयोग्य और परजीवी हो जाती है। जनता रूढ़ियों को नहीं तोड़ पाती है और विपद् में बार बार पड़ जाती है। इसलिये मुझको राजा बना कर आप पापी होंगे और सङ्ग में मुझको भी पाप का भागी बनायेंगे। मैं तो नीति और शौर्य के समन्वय और प्रचार में अपना बचा हुआ जीवन बिताऊँगा। वही मेरा राज्य है और हंस-मयूर मेरी पताका। परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि उस साधना के योग से आप अहर्निस उन्नति करें, आपकी स्वाधीनता अटल और अमिट रहे और आप संसार भर को अपने विकास का चमत्कार दें। (*नत मस्तक बैठ जाता है*)

सब—आर्य कृत की जय।

इन्द्रसेन—न, ऐसा मत कहिये। मालवों की जय ही उचित घोष है और उन जय मन्त्रधारी यौधेयों की जिन्होंने विदेशियों के उड़कर आने वाले पहाड़ों को उत्तर में ही अपने वज्रों से चूर चूर कर दिया, उन मालवों की जिनकी शक्ति और संस्कृति ने शकों की प्रचण्ड आंधी को केवल तेरह वर्ष के राज्य काल के उपरांत ही सदा के लिये सुला दिया! सातवाहन शातकर्णि के उन आन्ध्रों की जिन्होंने मालवों के साथ मिलकर देश को अभय की जलाञ्जलि दी।

पुरन्दर—मेरा एक प्रस्ताव तो माना ही जाना चाहिये।

सब—कहिये आचार्य।

पुरन्दर—मालवगण की फिर से स्थापना होने के उपलक्ष में कृत नाम से संवत का प्रवर्तन होना चाहिये, और मालवगण का जो कोई भी प्रमुख हुआ करे वह शकों के विध्वन्स की स्मृति में शकारि कहलावे।

सब—अवश्य हो, अवश्य हो। आर्य इसको नहीं रोक सकते। यह हमारे ही विक्रम का रूप है।

इन्द्रसेन—नहीं रोकता हूँ मालवगण। तेरह वर्ष की असंख्य यातनाओं के अन्तर हमारी संस्कृति का सतयुग फिर आया है। उसका सम्वत् चलाइये। और मुद्राओं पर लिखवाइये—मालवानाम जयः।

सब—स्वस्ति। स्वस्ति।

रामचन्द्र—बन्दी शकों और उस वकुल का क्या किया जाय जिसने आर्य इन्द्रसेन के वध करने का प्रयत्न किया था?

पुरन्दर—कुल ने उन लोगों के वध का निषेध कर दिया है। मेरी समझ में उनको आजन्म कारावास दिया जाय।

इन्द्रसेन—आचार्य, यह भी नहीं होना चाहिये। वकुल धारा का है। इसको उत्तमभद्रों के हाथ सौंप देना चाहिये। वे इसकी देख रेख करते रहेंगे। कदाचित् यह अपने जीवन को अब भी सुधार ले। और शकों को उस ओर पहुँचा देना चाहिये।

पुरन्दर—ये फिर उपद्रव करने के लिये भारत भूमि पर आवेंगे।

इन्द्रसेन—हमको अपने भगवान और अपने बाहुबल का भरोसा करना चाहिये। मुझको विश्वास है कि ये भारत का अब नाम नहीं लेंगे।

पांचवां दृश्य

[*स्थान—नर्मदा का तीर। भृगु घाट के निकट। समय—संध्या के पहले। तन्वी का साधारण वेश में प्रवेश*]

तन्वी—(*स्वगत*) नर्मदा के अनन्त जल प्रपात, स्फटिक के चमत्कार को संगीत का प्राण देने वाले गन्धर्व, भाप के रूप में तुम्हारी अप्सरा सदा तुम्हारे अखण्ड संग में रहती है। तुम सरस और सजीव हो। बोलो, मैं गुप्तचर से नारी, शक से आर्य, और नर्तकी से प्रेमोन्मादिनी क्यों हुई? तुम नहीं बतलाओगे? क्या तुम उनसे भी अधिक निष्ठुर हो? नहीं, मैं

अन्याय कर रही हू। रवि रश्मियों से तुम इन्द्रधनुषों को पकड़ पकड़ लेते हो, तुम निर्मम नहीं हो सकते। और वे? क्या कह सकती हूँ। सुनती हू उन्होने मालवों का राजा होने से नाहीं करदी है। तब मुझ सदृश क्षुद्र नारी को मन से हटा डालने में उनको कितने क्षण लगेंगे?

(इन्द्रसेन चुपचाप पीछे से आकर हाथ से उसकी आखें मीच देता है)

इन्द्रसेन—पाषाणों को भी पानी कर देने वाली अप्सरा, प्रताप के संगीत और इन्द्रधनुष को अपना समग्र ध्यान दे देने वाली तन्मयता—

तन्वी—(*हर्ष प्रमत्त होकर*) छोड़िये, छोड़िये आप बड़े छली हैं। मुझको दर्शन लेने दीजिये।

इन्द्रसेन—(*उसके सामने आकर हँसता हुआ*) स्थगित दान के देने और लेने का समय आ गया, परन्तु तुम तो निर्जीव प्रपात को ही सजीवता देने मे लगी हुई हो।

(तन्वी इन्द्रसेन के कंधे से जा टिकती है आंखो मे हर्ष के आंसू आ जाते हैं)

तन्वी—(*अलग होकर*) प्राणनाथ, कहां थे इतने दिनों? क्यों कोई समाचार नहीं दिया?

इन्द्रसेन—क्योंकि वैसे इस पवित्र सुन्दर स्थान पर अश्व को ठोकरें खिलाता और खाता, पेड़ों और पत्तों से पता पूछता, कैसे आता?

तन्वी— मैं त्रिपुरी में कह आई थी।

इन्द्रसेन—अब चलो मैं घोडे पर बिठा ले चलूंगा।

तन्वी—एक बार अप्सरा का नृत्य देखोगे, देव? (*मुस्कराकर*) फिर नहीं दिखलाऊँगी।

इन्द्रसेन—उसके लिये ठहर सकता हूँ। अभी प्रकाश है। आगे नृत्य क्यों नहीं देख सकूंगा?

तन्वी—क्योंकि मैं मन्जुली से कुल की कन्या बनने आ रही हूँ—

इन्द्रसेन—(हँसकर) तुमने मेरा उपनाम सुन लिया !

तन्वी—सुन लिया था (बाहुओं पर दृष्टि डालकर) खेद है इन गुदनों को न छील सकूँगी ।

इन्द्रसेन—खेद की कोई बात नहीं । वे मेरे गौरव हैं । गौरव के भी सौष्ठव । मन्जुली की मञ्जुलता के संस्मरण, तन्वी की सूक्ष्म मोहकता के प्रतीक और मेरी—

तन्वी— (हँसकर) और दृढ़ता के चिन्ह । कह डालिये देव, रुक क्यों गये ?

इन्द्रसेन—(मुस्कराकर) आज मेरी पराजय की पराजय है ।

तन्वी—अथवा मेरी जय की विजय देव ? (*नीचा सिर कर लेती है*)

इन्द्रसेन—अब अप्सरा क्या बातों में उलझाने जा रही है ?

तन्वी—(*सिर उठाकर*) नहीं नाथ । यह नर्मदा, यह प्रपात, यह सीकर-पुञ्ज एक वरदान मांगने के लिये मुझको विवश कर रहे हैं ।

इन्द्रसेन—वरदान मागने के लिये या वरदान देने के लिये ?

तन्वी—उपहास मत करो देव । मुझको इस परम सुन्दर स्थान पर आज जो कुछ मिला है उसके उपलक्ष मे दो मूर्तियां बनवा कर खड़ी करना चाहता हू । अनुमति देंगे देव ?

इन्द्रसेन—दोनों हाथों । (*हँसता है*)

तन्वी—अब मैं गाऊँगी ।

इन्द्रसेन—और मैं शुकदेव सा बनकर बैठता हूं । (*बैठ जाता है*)

(*तन्वी का गान के साथ नृत्य*)

(*राग बागेश्वरी*)

बीणा ने झंकार सुनाई—
लाज सकुच तज सरिता आई ।
फेन फुहार, कुहासा, ध्वनि, ले,

चल चल री, चल निधि से मिलले,
पवन आकाश संदेसा लाई—
वीणा ने झंकार जगाई ।

(गायन के बीच मे इन्द्रसेन थोड़े समय तक आँखें मूँद रहता है, फिर खोल लेता है और मुस्कराता रहता है)

तन्वी—(गायन की समाप्ति पर) आपने आँखें क्यों खोल लीं देव ?

इन्द्रसेन—क्योंकि तुम हृदय में स्थित होते हुये भी आँखों में आ बिराजीं, क्योंकि मैं मुक्त हूँ, क्योंकि प्रकृति और पुरुष अपने देश की स्वाधीनता को अमर रक्खेंगे ।

दोनों—(गाते हुये) अमर हो स्वाधीनता इस देश की ।

(यवनिका पतन)

लेखक के सम्बन्ध में।

दिसम्बर' ४७ में युक्तप्रात के स्वास्थ्य और स्वायत्त शासन-मन्त्री माननीय श्री आत्माराम गोविन्द जी खेर ने वर्मा जी के 'काश्मीर का काटा,—नाटक देख कर कहा था—'वर्मा जी ने हिन्दी की सेवा करके भारत का माथा ऊँचा किया है। उनका हिन्दी मे विशिष्ट स्थान है। परन्तु वे जितने बडे साधक हैं, कम लोग जानते हैं, उतने बडे मानव भी हैं।' वर्मा जी की मानवता की साधना ही उनकी विभिन्न कृतियों म भिन्न भिन्न रूप मे झाकती है।

इतिहास, कला, पुरातत्व-विज्ञान, मनोविज्ञान, साहित्य, मूर्तिकला एवम् चित्रकला मे वर्मा जी का विशेष रुचि है। सगीत में सितार, और खेलों मे शिकार व्यसन है।

'गढकुण्डार' आपका सर्व प्रथम उपन्यास है। उसे उनके परम मित्र स्वर्गीय गणेशशङ्कर विद्यार्थी ने पढा और पढने पर वर्मा जी को छाती से चिपटा कर कहा था—'ईश्वर की बड़ी कृपा है, जो तुम्हे वकालत के गाउन से उसने बचा लिया। 'वाल्टर स्काट' के दर्शन हिन्दी में मिले। आज आप निर्विवाद हिन्दी के उपन्यास सम्राट हैं।

गढकुण्डार १६२८ मे दो माह मे लिखा था। उसी वर्ष लगन, सगम प्रत्यागत, कुण्डली चक्र, प्रेमकी भेंट, हृदय की हिलोर लिखे गये। १६३० में विराटा की पद्मिनी पूर्ण करने के बाद ५ वर्ष तक आपने विश्राम किया। १९३९ में "धीरे धीरे" व्यङ्ग लिखा। १९४२-४४ म 'कभी न कभी' तथा 'मुसाहिबजू' उपन्यास लिखे।

१६४६-४७ मे 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' कचनार' 'अचल—मेरा कोई' 'सत्रह सौ उन्तीस' 'माधव जी सिंधिया' 'टूटेकाटे' 'आनन्दघन' उपन्यास तथा 'हंस-मयूर' 'राखी की लाज' 'पायल' 'बास की फास' 'मङ्गल मोहन' 'फूलो की बोली' 'कबतक' 'नीलकण्ठ' 'काश्मीर का काटा 'झासी की रानी' और 'पीले हाथ' नाटक एवं 'हरसिंगार' 'दबे पाव' और 'कलाकार का दण्ड' कहानी संग्रह लिखे।

स्कैच लिखने मे वर्मा जी दक्ष है। शिकारी कहानिया भी आपने लिखी है। नारी-मनोविज्ञान के आप कुशल चितेरे है। आपके चरित्र-चित्रण मे उबा देने वाली समानता नहीं—प्रत्युत स्वाभाविक विभिन्नता रहती है।

१६५० से वर्मा जी ६१ वे वर्ष मे प्रवेश कर चुके हैं। मऊ-रानीपुर के जन्मे हैं और झासी के निवासी। एकान्त आपको अधिक प्रिय है। आपका अधिक समय अब भी एकान्त मे व्यतीत होता है और तभी कुछ लिख पाते हैं।

'मञ्जरी' से उद्धृत

कुछ सम्मतियां

"' प्रसाद जी महाकवि थे, प्रेमचन्द जी सफल उपन्यास लेखक परन्तु श्री वृन्दावनलाल जी वर्मा उपन्यास और नाटक दोनो कला मे विशिष्ट स्थान रखते है। ' वर्मा जी की कृति प्रशसा की अपेक्षा नहीं रखती आज के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार वे है।

—डा० अमरनाथ झा।

यह निश्चित है कि हिन्दी के यह सर्वश्रेष्ठ मौलिक लेखक हैं।

—डा० धीरेन्द्र वर्मा।

हिन्दी साहित्यकारों मे वर्मा जी का स्थान बहुत ऊँचा है।उपन्यासकार तो उनकी तुलना का कोई है ही नहीं।

डा० श्री बाबूराम सक्सेना।

साहित्यकार वृन्दावनलाल वर्मा को पाकर हमारे भारत राष्ट्र का मस्तक ऊँचा हुआ है।

—श्री वियोगी हरि।

वृन्दावनलाल जी वर्मा द्वारा प्रणीत उपन्यास, विलक्षण हैं।

—राष्ट्रपति टण्डन जी।

N. C MEHTA, I. C S, Chief Commissioner, Himachal Pradesh Simla writes:—"I have read some of the books by Shri Brindaban Lal Varma with great pleasure I have always found complete mastery of the language and unusual power of vivid description.

His knowledge of Bundelkhand, its people and its folklore is unique and he deserves the warmest congratulations for putting before the public this exceptional knowledge so efficiently......"